अनुभव का आकाश

सम्पादक

डा० वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता

अनुभव का आकाश

सम्पादक

डा० वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता

अनुभव का आकाश

अनुभव का आकाश

सम्पादक
डा० वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता
रीडर, हिन्दी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़

अनुभव का आकाश

इन निबन्धों को पढते हुए मुझे सन्त कबीरदास की बहुत याद आयी; उनकी दो पंक्तियाँ दिलो-दिमाग पर छाने लगीं—**चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोय। दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय॥** मानव मात्र की स्थिति और नियति का इससे सुन्दर चित्र कहाँ मिलेगा। मुझे लगा कि हम सब आज भी जिन्दगी की चक्की मे पिस रहे हैं, सुबह-दोपहर-शाम की एकरसता मे अनेक विसंगतियों को जीते हुए भीतर से खण्डित हो रहे है और टूट रहे है। आम आदमी की इस त्रासदी को साहित्यकार पहचानता है। आम आदमी हर तन्त्र के हाथों ठगा गया है—चाहे वह राजतन्त्र हो या प्रजातन्त्र। इस इन्सानी तकलीफ का दर्द सन्त कबीर को भी था और आज के साहित्यकार को भी है। असलीयत तो यह है कि प्रत्येक साहित्कार कहीं भीतर से सन्त ही होता है। सच का पक्ष लेते हुए बड़ी-से-बड़ी तकलीफ झेलने के लिए तैयार। सच की पक्षधरता के कारण ही कोई साहित्यकार व्यग्य के शस्त्र को अपनाता है। ठीक यही स्थिति इस सग्रह के अधिकांश निबन्धकारो की है। संवेदनात्मक धरातल पर इन्होंने अनुभव प्राप्त किये हैं और व्यग्यात्मक शिल्प द्वारा उन्हे अभिव्यक्ति दी है। इस तरह इन निबन्धों मे सवेदनात्मक अनुभवों को कलात्मक अभिव्यक्ति मिली है। अनुभवो मे विविधता और विस्तार है। सच तो यह है कि इन रचनाओ मे जीवन का सीधा साक्षात्कार है—जीवन की विडम्बना और विसगति है, जीवन की गति और ठहराव है, जीवन मे व्याप्त पाखण्ड और भ्रष्टाचार है और साथ है जीवन की ताजगी। ताजगी इसलिए है क्योंकि इन रचनाओं का सीधा सम्बन्ध निबन्धकारों के निजी अनुभवो से है, जिन्दगी की ठोकरे खाकर बने चिन्तनशील व्यक्तित्व से है। इन उन्नीस निबन्धकारो का अनुभव-संसार अपने-अपने दायरो मे बहुत विस्तृत है और उन अनुभवों के अनेक आयाम है। सन्त कबीर की तरह इन निबन्धकारों ने 'अकल झरोखे' बैठकर 'आँखन-देखी' को ही अभिव्यक्ति दी है। इन निबन्धों में आज के युग की पूरी गाथा है, इनमे जीवन-जगत् की असल बयानी है और है युग-जीवन की राम कहानी।

साहित्य की अन्य विधाओ की अपेक्षा निबन्ध का जीवन के साथ सीधा और आत्मीय सम्बन्ध है। दुनिया का कोई ऐसा विषय नही जिस पर निबन्ध न लिखा जा सके और अब, ललित निबन्धो का शिल्प भी ऐसा बन चुका है, जो इसे बाँधता नही, उन्मुक्त करता है। निबन्ध, को एक ऐसी स्वच्छन्द रचना

प्रथम संस्करण : 1986
प्रतियाँ : 1100
मूल्य : बीस रुपये (Rs. 20-00)

मुद्रक सहारा प्रिंटिंग प्रेस चण्डीगढ़

प्रस्तावना

'अनुभव का आकाश' हरियाणा के निबन्धकारों के निबन्धों का दूसरा संकलन है। इस संकलन में उन्नीस निबन्ध संकलित हैं। इन निबन्धों में लेखकों के वैयक्तिक अनुभव सामाजिकता के व्यापक आकाश को प्राप्त करने में सफल रहे हैं।

आधुनिक निबन्ध साहित्य में व्यंग्य एक आवश्यक एवं सबल तत्त्व के रूप में उभरकर आया है। आज की सामाजिक विद्रूपताओं, विसंगतियों एवं व्यवस्था की विकलांगता पर इन निबन्धों में तीखा व्यंग्य किया गया है। निबन्धों में आम आदमी की मानसिक व्यथा साकार हो उठी है। इन निबन्धों के आज के आम आदमी की विवशता, आकुलता एवं आकांक्षा को भी कलात्मक अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। समाज की वर्तमान स्थिति के प्रति जागरूकता एवं संवेदनशीलता इन निबन्धों की मूल शक्ति कही जा सकती है। जहाँ अधिकांश निबन्धों में सामाजिक एवं आर्थिक असंगतियों को उठाया गया है वहाँ कुछेक निबन्धों में राजनीति में व्याप्त नैतिक अवमूल्यन को भी प्रतिपाद्य बनाया गया है। ये निबन्ध विषय वैविध्य एवं प्रतिपाद्य दोनों दृष्टियों से 'अनुभव का आकाश' शीर्षक को सार्थकता प्रदान करते हैं।

'अनुभव का आकाश' का प्रकाशन हरियाणा साहित्य अकादमी की हरियाणा की साहित्यिक प्रतिभा के विकास एवं प्रोत्साहन के लिए हिन्दी, उर्दू तथा पंजाबी भाषाओं की रचनाओं के संकलन प्रकाशित करने की योजना के अन्तर्गत किया गया है। आशा है इस संकलन से जहाँ पाठकों के अनुभव का आकाश व्यापकता प्राप्त करेगा वहाँ सुधी समीक्षक इसका स्वागत करेंगे।

जगदीश नेहरा

शिक्षा राज्य मन्त्री, हरियाणा
एवं
अध्यक्ष हरियाणा साहित्य अकादमी

[हस्ताक्षर]

निदेशक
हरियाणा साहित्य अकादमी,
चण्डीगढ़

अनुभव का आकाश

इन निबन्धो को पढते हुए मुझे सन्त कबीरदास की बहुत याद आयी; उनकी दो पंक्तियाँ दिलो-दिमाग पर छाने लगीं—**चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोय। दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय॥** मानव मात्र की स्थिति और नियति का इनसे सुन्दर चित्र कहाँ मिलेगा। मुझे लगा कि हम सब आज भी जिन्दगी की चक्की मे पिस रहे हैं, सुबह-दोपहर-शाम की एकरसता मे अनेक विसगतियो को जीते हुए भीतर से खण्डित हो रहे हैं और टूट रहे हैं। आम आदमी की इस त्रासदी को साहित्यकार पहचानता है। आम आदमी हर तन्त्र के हाथों ठगा गया है—चाहे वह राजतन्त्र हो या प्रजातन्त्र। इस इन्सानी तकलीफ का दर्द सन्त कबीर को भी था और आज के साहित्यकार को भी है। असलीयत तो यह है कि प्रत्येक साहित्कार कहीं भीतर से सन्त ही होता है। सच का पक्ष लेते हुए बडी-से-बड़ी तकलीफ झेलने के लिए तैयार। सच की पक्षधरता के कारण ही कोई साहित्यकार व्यंग्य के शस्त्र को अपनाता है। ठीक यही स्थिति इस संग्रह के अधिकाश निबन्धकारो की है। संवेदनात्मक धरातल पर इन्होंने अनुभव प्राप्त किय है और व्यंग्यात्मक शिल्प द्वारा उन्हे अभिव्यक्ति दी है। इस तरह इन निबन्धों में सवेदनात्मक अनुभवो को कलात्मक अभिव्यक्ति मिली है। अनुभवों मे विविधता और विस्तार है। सच तो यह है कि इन रचनाओं मे जीवन का सीधा साक्षात्कार है—जीवन की विडम्बना और विसगति है, जीवन की गति और ठहराव है, जीवन मे व्याप्त पाखण्ड और भ्रष्टाचार है और साथ है जीवन की ताजगी। ताजगी इसलिए है क्योंकि इन रचनाओं का सीधा सम्बन्ध निबन्धकारों के निजी अनुभवो से है, जिन्दगी की ठोकरें खाकर बने चिन्तनशील व्यक्तित्व से है। इन उन्नीस निबन्धकारों का अनुभव-संसार अपने-अपने दायरों में बहुत विस्तृत है और उन अनुभवों के अनेक आयाम है। सन्त कबीर की तरह इन निबन्धकारों ने 'अकल झरोखे' बैठकर 'आंखन-देखी' को ही अभिव्यक्ति दी है। इन निबन्धो में आज के युग की पूरी गाथा है, इनमे जीवन-जगत् की असल बयानी है और है युग-जीवन की राम कहानी।

साहित्य की अन्य विधाओ की अपेक्षा निबन्ध का जीवन के साथ सीधा और आत्मीय सम्बन्ध है। दुनिया का कोई ऐसा विषय नही जिस पर निबन्ध न लिखा जा सके और अब, ललित निबन्धो का शिल्प भी ऐसा बन चुका है, जो इसे बाँधता नही, उन्मुक्त करता है। निबन्ध, को एक ऐसी स्वच्छन्द रचना

कहा गया है जिसमें साहित्यकार का उल्लास और चिंतन सहज रूप में अभिव्यक्ति पाता है। निबन्धकार मन के इस स्वच्छन्द विचरण में प्राप्त अनुभवों, स्वनिर्मित विश्वासों और आस्थाओं को एक विशेष आत्मीयता के साथ प्रकट करता है। दूसरे शब्दों में निबन्ध साहित्यकार के नितान्त वैयक्तिक स्वाधीन विचारों की एक निर्मल तथा सीधी अभिव्यक्ति है। सम्भवतः इसीलिए निबन्ध को एक ऐसी बात-चीत कहा गया है जिसमें लेखक के मौलिक व्यक्तित्व की सही अभिव्यक्ति हो सके। एक अन्य विद्वान् ने किसी सामयिक विषय पर 'गप्पमयी' रचना को भी निबन्ध कहा है। यहाँ निबन्धकार उपदेशक बनकर नहीं, एक मित्र के रूप में सामने आता है—एक ऐसा मित्र जिसकी हल्की-मीठी चर्चा मन को लुभाती है और प्रिय लगती है। निबन्धकार बिना संकोच के अपने जीवन के अनुभव सुनाता है और पाठक को आत्मीयता के साथ उनमें भाग लेने को आमन्त्रित करता है। उन्मुक्तता और वैयक्तिकता निबन्ध को स्वरूप देते हैं। निबन्धकार चुने हुए विषय को अपने व्यक्ति-त्व में पगा कर अभिव्यक्ति देता है। हास्य एवं विनोद निबन्ध-कला का प्राण-तत्त्व माना गया है। किन्तु स्वातन्त्र्योत्तर काल में बदली राजनीतिक व सामाजिक परि-स्थितियों में सर्वत्र परिव्याप्त विकृतियों, विद्रूपताओं, मिथ्याचारों, भ्रष्टाचारों तथा विसंगतियों के प्रति जागरूकता बढ़ाने का काम व्यंग्यात्मक निबन्धों ने किया है। यदि कहा जाये कि पिछले तीस वर्षों में व्यंग्य-निबन्ध साहित्य में सर्वाधिक लोकप्रिय हुए हैं तो अत्युक्ति न होगी। जीवन-जगत् की कोई भी ऐसी विद्रूपता एवं विकृति न होगी जो व्यंग्य-निबन्धों की चपेट में न आयी हो।

इस निबन्ध-संग्रह में भी अधिकांश रचनाएँ हास्य एवं व्यंग्य प्रधान हैं। इन रचनाओं में आस-पास के जीवन के प्रति एक व्यंग्यात्मक प्रतिक्रिया है और उस प्रतिक्रिया के मूल में एक भीतरी तकलीफ और उलझन-भरी चिन्ता नजर आती है। देश की वर्तमान स्थिति के प्रति चिन्तायुक्त पीड़ा की अन्तर्धारा इन निबन्धों की मूल शक्ति है।

आज सर्वत्र व्याप्त **कुछ नहीं होगा** की दृष्टि से ये साहित्यकार परेशान हैं। यह दृष्टिकोण ऐसा है जो सारे समाज में उच्चादर्शों के अवमूल्यन की प्रक्रिया को बल दे रहा है। इस दृष्टिकोण को बदले बिना यह प्रक्रिया बदलेगी नहीं। निबन्ध-कार अपने चिन्तन और अनुभव द्वारा इस स्थिति का बहुत सटीक ढंग से विश्लेषण करता है। इस स्थिति के लिए आज के नेता कम जिम्मेदार नहीं। **नेता जी** निबन्ध में अतिशयता से बचकर वास्तविकता को जिस सहजता से व्यक्त किया गया है उससे निबन्ध रचना प्रभावपूर्ण बन सकी है। कई बार आक्रोश और अति-शयता व्यंग्य रचना के दंश को कम करते हैं और कलात्मक संयम प्रहार को चोटीला बनाता है। **नेता जी के आन्दोलन** निबन्ध उन नेताओं पर व्यंग्य है जो हर

परिस्थिति में अपने हित साधन को सर्वोपरि मानते हैं। आन्दोलन कोई भी हो— नशाबन्दी या नसबन्दी, नेता जी सबसे आगे। राजनीतिज्ञ किस प्रकार नये-से-नये आन्दोलन चलाकर जनता को मूर्ख बनाकर अपना हित साधन कर रहे हैं—इस विडम्बित स्थिति को यह निबन्ध उजागर करता है। **कबीरा खड़ा बाजार में** निबन्ध द्वारा नेताओं के उस 'तटस्थ योग' पर व्यंग्य किया गया है जिनके आस-पास कुछ भी घटता रहे—चोरी हो या फिर डकैती, लूटमार हो या फिर बलात्कार, हत्या हो या आत्महत्या—वे विचलित नहीं होते। सिर्फ नेताओं में ही नहीं, यह प्रवृत्ति एक बीमारी की तरह बढ़ रही है—निबन्धकार ने इस प्रवृत्ति पर ही चोट की है।

चुनाव-ऋतु-वर्णन में तुलसीदास के वर्षा ऋतु वर्णन की पैरोडी करते हुए चुनाव के विविध पक्षों पर मीठे-मीठे कटाक्ष हैं। पूँजीवादी समाज में संग्रह की भावना पर मीठी चुटकियाँ लेते हुए **दोऊ मुट्ठी भींचिए** निबन्ध में प्रत्येक पाठक को अपने मन में झाँकने के लिए विवश किया गया है। सहजता और सादगी इस निबन्ध की खूबसूरती है। **मान न मान मैं तेरा मेहमान** निबन्ध में अतिथि सम्बन्धी पुरानी धारणा और आज के मेहमानों में आ गये अन्तर का बड़ी सूझ-बूझ के साथ विश्लेषण किया गया है। नगर संस्कृति की मानसिकता और ग्रामीण आत्मीयता को आमने-सामने प्रस्तुत करता है निबन्ध **बुरे फँसे टी० वी० लेकर**। निबन्धकार की विनोदात्मक दृष्टि इस रचना की शक्ति है। परिवर्तन के इस चक्के ने स्त्री-पुरुष की भूमिका, कुछ-कुछ बदल दी है। आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी स्त्री के पति को जो नये अनुभव होते हैं उन्हें **प्रतीक्षा में डार्लिंग की** में बड़ी कुशलता से व्यक्त किया गया है। **बुरे फँसे श्रीमती जी को वचन देकर** निबन्ध में पढ़े-लिखे पति और अनपढ़ पत्नी के बीच घटित होने वाली विसंगत स्थितियों को आधार बनाया गया है। एक निबन्धकार की पीड़ा यह है कि जिसे वह **आईना** दिखाना चाहते हैं, वे तो अन्धे हो चुके हैं। इस निबन्ध का अन्त कहानी की तरह का है। जब साहित्य रचना भी एक मर्ज़ बन जाये तो साहित्यकार **सृष्टि का एक दयनीय जीव** बन जाता है। **हाथ का कमाल** निबन्ध में हाथ सम्बन्धी अनेक विनोदात्मक स्थितियों का मज़ा लेते हुए अनेक मीठी चुटकियाँ ली गयी हैं। **लड़का पसन्द था** एक कथात्मक निबन्ध है। इसमें मानव स्वभाव के वैचित्र्य को दिखाकर विनोदात्मक स्थितियों की योजना की गयी है। यह रोचक एवं मनोरंजक निबन्ध है। **समाजवाद के नाम पर** आजकल क्या कुछ नहीं होता—उसी सबका पर्दाफाश यह निबन्ध करता है। बातचीत के अन्दाज़ में लिखा गया शेरो-शायरी से भरपूर निबन्ध **'मैं मर गया'** एक नया अनुभव देता है। जूँ, खटमल और मच्छर अपने इस छोटे आकार में ही परेशान किये रहते हैं किन्तु इनके गुण आदमियों में

आ जाये तो ?? **तीन देव बन्दऊँ जगहन्ता** निबन्ध में कुछ इसी प्रकार के संकेत मिलते हैं। चुगली कैसी स्थिति पैदा कर सकती है, इसका अन्दाजा लगाना मुश्किल है—इसलिए **चुगली तेरा सत्यानाश** लालफीते में जकड़ी दफ़्तरी कार्यवाही को, और तो कोई क्या बदलेगा, भगवान् भी नहीं बदल सकते। भगवान् स्वयं आज की इस व्यवस्था का **एक और शरणार्थी** है। इस विडम्बना पर ही निबन्ध-संग्रह समाप्त होता है। ये सभी निबन्ध हरियाणा प्रदेश के साहित्कारों की राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति सचेतता तथा जागरूकता को प्रकट करते है।

कहा गया है कि आकाश असीम है किन्तु प्रत्येक पक्षी अपनी-अपनी क्षमता के अनुरूप इसमें उड़ान भरता है। मुझे लगता है कि समकालीन जीवन स्थितियों से सीधे टकराते हुए हरियाणा प्रदेश के इन संवेदनशील निबन्धकारों ने अनुभवो का एक विस्तृत आकाश निर्मित किया है। अनुभवों के इस विस्तृत आकाश में कुछ साहित्यकारों ने ऊँची उड़ानें भी भरी हैं और कुछ की उड़ान सीमित भी रही है। किन्तु इतना अवश्य है कि इन सभी निबन्धों को पढ़कर मेरे मन का आकाश बड़ा हुआ है।

...और मुझे पूरा विश्वास है कि इन निबन्धों द्वारा पाठकों के अनुभव का आकाश विस्तृत होगा।

साहित्य की यही भूमिका है।

—**वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता**
696, सेक्टर 11-बी,
चण्डीगढ़-160011

क्रम

कुछ नहीं होगा

दिनेश दधीचि

शीर्षक को दो बार पढ़िए। पहली बार आश्वस्त करने के ढंग से, किसी प्रकार की हानि या दुष्परिणाम की आशंका को नकारते हुए। दूसरी बार निराशावादी ढंग से, किसी प्रकार के सही उपाय किये जाने या सार्थक क़दम उठाये जाने की सम्भावना को नकारते हुए। नकार अभिव्यक्ति का बड़ा सरल और सशक्त माध्यम है। आप ऊपर-नीचे सिर हिलाते हैं, तो अभिव्यक्ति मद्धिम और अस्पष्ट रहती है। आप दायें-बायें सिर हिलाते हैं, तो आपकी बात ज़ोरदार ढंग से स्पष्ट रूप में व्यक्त हो जाती है। इस निबन्ध में हम दूसरी किस्म के इन्कार की चर्चा करेंगे।

स्थिति बड़ी सामान्य है। आपको कई बार इसका सामना करना पड़ा होगा। सच तो यह है कि जहाँ कहीं भ्रष्टाचार, अनियमितता या अन्याय की चर्चा चल निकलती है, वहाँ कोई-न-कोई व्यक्ति ऊपर बताये गये निराशावादी तरीके से यह ज़रूर कह देता है—'कुछ नहीं होगा।' इसके बावजूद इस प्रकार की चर्चा प्रायः होती हैं; भविष्य में भी सम्भवतः होती रहेगी। इसी से स्पष्ट हो जाना चाहिए कि यह कथन ग़लत है। अगर सही है, तो भी हम इसे वास्तव में सही मानते नहीं हैं। तभी तो कुछ न होने की निश्चित जानकारी के बाद भी हम अन्याय की बात करते हैं; अनियमितता की शिकायत करते हैं; भ्रष्टाचार पर अंगुली उठाते हैं।

मान लीजिए, आपके मुहल्ले में कूड़े का ढेर प्रायः इकट्ठा हो जाता है। मुहल्ले के सभी निवासी कुछ समय तक इसे सहन करेंगे काफ़ी लम्बे

समय तक भी महसूस करते रह सकते हैं। धीरे-धीरे आप या आप जैसे दो-चार अन्य जागरूक नागरिक असुविधा महसूस करेंगे। किसी दिन इकट्ठे बैठ कर इस विषय में बात करेंगे। कोई व्यक्ति सलाह देगा कि नगर पालिका के अधिकारियों से मिलकर इस विषय में बात की जाये। आप इसका समर्थन करेंगे। तभी कोई व्यक्ति निराशावादी ढंग से, किसी प्रकार के सही उपाय किये जाने या सार्थक कदम उठाये जाने की सम्भावना को नकारते हुए कह देगा—'कुछ नहीं होगा।' ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत है।

कई बार ऐसा होता है कि पानी, बिजली, सफाई आदि से सम्बन्धित किसी समस्या से महीनों तक लगातार परेशान होने के बाद जब नागरिक 'कुछ नहीं होगा' वाले दृष्टिकोण का प्रतिरोध करते हुए सम्बन्धित अधिकारी को अपनी समस्या बताते हैं, तो पता चलता है कि उसका हल बहुत आसान था। अधिकारी का ध्यान उसकी ओर दिलाये जाने में देर की गयी—सिर्फ इसी वजह से नागरिकों को महीनों तक असुविधा हुई। कई अधिकारी इस तरह की शिकायतों पर तुरन्त कार्यवाही करते हैं। शिकायत ही उन तक नहीं पहुँचायी जायेगी, तो एक तरह से नागरिक स्वयं भी उस समस्या के लिए जिम्मेदार होंगे। ऐसी स्थिति में यह कोई प्रभावशाली तर्क नहीं माना जायेगा—

'हमने माना कि तग़ाफुल न करोगे हरगिज़।
ख़ाक हो जायेंगे हम तुमको ख़बर होने तक।।'

ख़बर अपने आप नहीं होती, तो पहुँचायी जानी चाहिए। ख़ाक होने से बचना चाहें, तो 'कुछ नहीं होगा' वाला दृष्टिकोण छोड़ना ही होगा।

इस तरह का दृष्टिकोण, लगता है, जीवन के काफी कटु अनुभवों के बाद बन जाता होगा। चारों ओर निष्क्रियता, यथास्थितिवाद और अकर्मण्यता का वातावरण देखने के बाद किसी भुक्तभोगी का उपर्युक्त निष्कर्ष बना लेना स्वाभाविक लगता है। शायद पहली बार जिस व्यक्ति ने यह वाक्य इस ढंग से बोला होगा, उसे जीवन में इस प्रकार के कटु अनुभव हो चुके होंगे। पर, अफसोस की बात है कि अब इस वाक्य का प्रयोग स्वयं अपनी निष्क्रियता को छिपाने के लिए किया जाता है। नगर पालिका के अधिकारियों से मिलने या उनसे पत्र द्वारा सम्पर्क बनाने का काम जिस व्यक्ति को अनावश्यक रूप से कष्टदायक लगता है, वह अपनी अनिच्छा को गम्भीर दर्शन का लबादा पहनाकर सबके सामने रखेगा। इस तरह निष्क्रियता का प्रसार होगा। अनिश्चय की स्थिति में बैठे व्यक्ति निष्क्रियता की ओर झुकना पसन्द करेंगे।

अपने सम्मान को ठेस पहुँचाये बिना प्रयासरत होने की आवश्यकता से बचने का यह एक नायाब तरीका है। सम्मान बचता ही नहीं, कई बार बढ़ भी जाता

है। 'कुछ नहीं होगा' की मुद्रा में बैठा व्यक्ति बुजुर्गी झाड़ रहा है। वह अनुभवी है। अकर्मण्यता का दर्शन बघार रहा है, चूँकि कर्मण्यता की निरर्थकता को वह जान चुका है।

कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन कर्मण्यता से बचने के लिए यही तर्क देता है कि युद्ध में जीतने से भी क्या होगा और राज्य, सुख, भोग, ऐश्वर्य का भी हम क्या करेंगे। यह भी 'कुछ नहीं होगा' जैसा 'प्रज्ञावाद' है। जब अर्जुन उच्च स्तर का दर्शन बघार चुका होता है, तो कृष्ण चतुर मनोवैज्ञानिक की तरह उसके तर्कों का खोखलापन उघाड़ते हैं। आजकल किसी सभा या समूह में जो व्यक्ति निष्क्रियता का दर्शन सुनाने लगे तो उसका प्रतिकार करने के लिए भी ऐसे व्यक्तियों की जरूरत है, जो 'कुछ नहीं होगा' के खोखलेपन को उघाड़ सकें।

संसार में स्थितियाँ सदा से ऐसी रही हैं कि उनमें 'कुछ' और किये जाने की गुंजाइश रहती है। समस्याएं और कठिनाइयाँ हर युग में होती हैं। हैमलेट तो जीवन की इन मुश्किलों की अच्छी-खासी सूची बनाता है। हृदय की पीड़ा, शारीरिक कष्ट, समय के बेरहम कोड़े, दुष्ट शासक के अत्याचार, अभिमानी व्यक्ति का अपमानजनक व्यवहार, असफल प्रेम की वेदना, कानून की देरी, अधिकारियों का हृदयहीन रवैया—ये तो जीवन की कुछ गिनी-चुनी समस्याएँ हैं। पर इनका सामना करने वाला व्यक्ति 'कुछ नहीं होगा' के पलायनवादी दर्शन का सहारा ले—यह बात मानव की गरिमा के अनुकूल नहीं है।

वास्तविकता यह है कि 'कुछ' होता है: 'बहुत कुछ' होता है। समाचार-पत्र के शिकायत वाले कॉलम में आपका पत्र छपने पर बहुत सारे लोग उसे पढ़ते हैं। उन्हें शिकायत सही लगती है, तो वे कम-से-कम इस विषय में बात जरूर करते हैं। कुछ और लोग वैसी ही शिकायत करते हैं, तो धीरे-धीरे उस समस्या के विरुद्ध एक विशेष तरह का वातावरण बन जाता है। पर्याप्त दहेज न लाने के कारण नव वधू को जिन्दा जला दिया गया। ऐसे समाचार अखबारों में छपे, पढ़े गये और दहेज की कुप्रथा के विरुद्ध धीरे-धीरे वातावरण तैयार हुआ। 'कुछ नहीं होगा' वाला दृष्टिकोण अपनाया जाता, तो एक तो यह असामनवीयता और क्रूरता को परोक्ष प्रोत्साहन देने वाली बात होती, दूसरे दहेज के विरुद्ध इतना जनमत तैयार न हो पाता।

यह तर्क सही है कि जब एक ही घटना थोड़े-थोड़े परिवर्तन के साथ बार-बार दुहरायी जाने लगती है, तो उसकी सूचना अपना प्रभाव खो देती है। हम उसे सनसनीखेज कहना छोड़ देते हैं; उसके आदी हो जाते हैं, और ऐसी हालत में उसके विरुद्ध जनमत तैयार करना सम्भव नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति से बचने के लिए फिर, सबसे पहले, 'कुछ नहीं होगा' वाला दृष्टिकोण छोड़ना होगा और

प्रत्येक घटना को अलग-अलग लेना होगा। घटना का प्रचार इस तरह से नहीं होना चाहिए कि वह किसी खास पैटर्न या शैली में ढली हुई लगे। उसके विशिष्ट मुद्दों को स्पष्ट किया जाना चाहिए। यह जिम्मेदारी पत्र-पत्रिकाओं के संवाद-दाताओं के कन्धों पर आती है।

कार्यालयों में कर्मचारी काम नहीं करते; हेराफेरी या घोटाले प्रायः होते रहते हैं; रिश्वत और सिफ़ारिश के बिना फाइलें रुक जाती हैं। इस तरह की शिकायतें बहुत बार सुनी जाती हैं और आमतौर पर ये सही भी होती हैं। एक बड़ा महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या हम बेईमानी, रिश्वतख़ोरी, भ्रष्टाचार और हेराफेरी के पक्षधर हैं या इन्हें सचमुच दूर करना चाहते हैं? अगर दूर करना चाहते हैं, तो हम यह नहीं कह सकते कि 'कुछ नहीं होगा'। ऐसा कहने वाला व्यक्ति सूक्ष्म रूप में अन्याय और भ्रष्टाचार का पक्षधर होता है, क्योंकि वह उनकी पराजय को असम्भाव्य मानकर चल रहा है। वह एक तरह से इन शिकायतों की सार्थकता को खुद ही नकार रहा है। वह ऐसा महसूस करता है कि जब सभी कार्यालयों में ऐसा हो रहा है, तो इसमें हर्ज ही क्या है? यह विचित्र बात है कि गलत कार्य जब बार-बार किया जाता है, तो वह सही लगने लगता है। जब कोई कण्डक्टर पहली बार आपसे पैसे लेकर आपको टिकट नहीं देता या जब आप बिजली का मीटर लगवाने के लिए पहली बार रिश्वत के रूप में पैसे देते हैं या जब आप पहली बार कम वेतन लेकर ज़्यादा वेतन की रसीद पर हस्ताक्षर करते हैं, तो आप थोड़ी-सी असुविधा और परेशानी अवश्य महसूस करते हैं। पर जब यह आपकी दिनचर्या का एक अंग बन जाता है, तब एक ख़तरनाक प्रक्रिया शुरू हो चुकी होती है। आप 'सही' और 'गलत' के बीच विभाजक-रेखा नहीं खींच पाते हैं या 'ग़लत' को 'सही' मानने लग जाते हैं। यह प्रक्रिया व्यक्तिगत स्तर पर नहीं, बल्कि सामाजिक और सार्वजनिक स्तर पर चल रही है। यह हमारे समूचे समाज में उच्चादर्शों के अवमूल्यन की प्रक्रिया है। 'कुछ नहीं होगा' के दृष्टिकोण ने इस प्रक्रिया को बढ़ावा दिया है। इस दृष्टिकोण को बदले बिना यह प्रक्रिया नहीं रुकेगी।

* * *

नेता जी

डा० हिम्मत सिंह जैन

हरियाणवी भाषा में नेता उस रस्सी को कहते है जो गाय को दुहने के समय उसकी टाँगों को बाँधी जाती है। गाय को नेता बाँधने के पश्चात् ही दूध निकाला जाता है अन्यथा दुहने वाले को कभी भी लात लग सकती है। हरियाणवी भाषा के नेता तथा हिन्दी के 'नेता जी' सम्भवतः समान प्रतीत होते है, अतः हम कह सकते हैं कि नेता उस उपकरण को कहते है जो जनता रूपी गाय का दूध निकालने के काम आता है। एक बार वह जनता के पाँव को पकड़ता है अर्थात् खुशामद करता है, वोट माँगता है, इसके पश्चात् वह जनता को जकड़ लेता है और उसे पूरी तरह दूहे बिना नहीं छोडता। कई बार वह दूध के साथ-साथ खून भी चाट जाता है। गाय घास खाती है और दूध देती है, इसी प्रकार जनता कृषि करती है, कुछ धन्धा करती है, नौकरी करती है और चाँदी रूपी दूध को दुह लेता है नेता। सुना जाता है कि कई बार नाग भी गाय की टाँगों पर नेता की तरह लिपटकर उसका दूध चूस जाता है अर्थात् नाग भी नेता का रूप धारण कर लेता है। नाग और नेता में थोड़ा ही अन्तर है। नाग जीवित प्राणी है और नेता (रस्सी) निर्जीव।

ब्रह्मा ने नेता जी को फुरसत में गढ़ा है। ऊँची-सी तोंद, लम्बा-सा कद, मांसल शरीर, लम्बी-लम्बी भुजाएँ, बड़ी-बड़ी टाँगें—सभी कुछ विधाता ने उसे ही दे डाला है। सबसे बड़ी बात यह है कि नेता को चालू मस्तिष्क व कठोर दिल भी प्राप्त हुआ है। इन्ही विशेषताओं के कारण वह हर स्थान पर आसानी से पहचाना जाता है। उसका भाषण सर्वगुण सम्पन्न होता है; उसमें माधुर्य गुण तो होता ही

न अज और प्रसाद गुण की भी कमी नहीं होती स्वर का उतार चढ़ाव वह खूब जानता है जिसकी तान पर जन-मानस मोहित हो जाता है।

मनुष्य अपने कपड़ों से पहचाना जाता है—जैसे पैण्ट पहनने से बाबू बन जाता है, लंगोटी धारण करने से साधु...और उसी प्रकार धोती व कुर्ता पहनने से नेता बन जाता है। यदि जेकट या लम्बा कोट ऊपर से पहन लिया जाये—तो सोने में सुहागा समझिये। जिस प्रकार सन्यासी बनने पर भगवे कपड़े धारण करने पड़ते हैं उसी प्रकार नेता की दीक्षा लेते ही सफ़ेद कपड़े धारण करने होते हैं। भारत में सफेद कपड़े या तो विधवा के होते है या नेता के। विधवा पुनर्विवाह करवा कर सफेद कपड़ों को छोड़कर रंगीन कपड़े धारण करने लग जाती है परन्तु नेता अनेक विवाह अर्थात् अनेक दल बदलकर भी कपड़े रंगीन नहीं बनाता। विधाता की विडम्बना है कि उसके दिल की सफेदी कपड़ों पर आ जाती है और बेचारा दिल काला पड़ जाता है।

भगवान् ने सभी प्राणियों को आजीविका के लिए कुछ-न-कुछ धन्धा प्रदान किया है। जैसे अध्यापक पढ़ाता है, व्यापारी व्यापार करता है, उसी प्रकार नेता का धन्धा है थूक बिलोना। उसको थूक बिलोने से ही मक्खन की प्राप्ति हो जाती है। लम्बे-लम्बे भाषण लोगों को पागल बना देते हैं। वह भाषण के माध्यम से जनता के समक्ष बालू के महल बनाता है, उनमें हीरे-पन्ने जड़ता है, जिससे लोगों की आँखे चुंधियाँ जाती है तभी नेता माल पर हाथ साफ कर डालता है।

देवताओं में जो स्थान इन्द्र का है, वही स्थान मानवों में नेता जी का। इन्द्र वर्षा द्वारा वृक्षों को पुष्पित व पल्लवित करता है, नेता अपनी कृपा-दृष्टि द्वारा ही चमचों को माला-माल बनाता है। वह राजनीतिक चमचे को चेयरमैन, व्यापारी चमचे को परमिट तथा सरकारी चमचे को पदोन्नति प्रदान करता है। जिस प्रकार बादलों का पानी वर्षा द्वारा भूमि पर आता है तथा वहाँ से नदी द्वारा पुन: समुद्र में चला जाता है। यह पानी का चक्र है। इसी प्रकार राजनीतिक-चक्र विद्यमान है। प्रथम चक्र है नेता और चमचों का अर्थात् चमचों को अर्थप्राप्ति अपने नेता द्वारा और नेता को वोटों की प्राप्ति का माध्यम चमचे। दूसरा चक्र है नेता और धनाढ्य व्यापारी का। व्यापारी धन देता है जिससे नेता चुनाव जीतता है, तत्पश्चात् वह व्यापारी का बदला चुकाता है और व्यापारी माला-माल बन जाता है। वोट डालने वाला बीच का छोटा-सा पुर्जा है। पुर्जो को घुमाने का काम सदा चक्र करता है, स्वयं पुर्जा कभी नहीं घूमता।

ऋषि-मुनियों का कहना है कि यह दुनिया रंगमंच है और मानव नाटक के पात्र मात्र। ऐसा मान लेने पर हमें नेता को नाटक का नायक मानना पड़ेगा। वास्तव में नेता शब्द की व्युत्पत्ति नायक शब्द से ही हुई है। इस सिनेमा के युग में नेता को अभिनेता भी कहा जा सकता है। वह अनेक रूप-रंग बदलता है, अनेक

नाटक रचता है अतः नेता और अभिनेता में दो ही अंगुल का अन्तर है। जो इस अन्तर को पार कर लेता है, वही अभिनेता नेता बन जाता है। इसी प्रकार नेता भी सफल अभिनेता बन सकता है। सिनेमा के क्षेत्र में अभिनेता की अपेक्षा अभिनेत्री को आसानी से सफलता प्राप्त होती है, उसी प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में भी नेता की अपेक्षा नेत्री को सफलता शीघ्र मिलती है। अभिनेता-अभिनेत्री व नेता-नेत्री सभी धनाढ्य होते हैं और सभी लोगों की आँखों के तारे होते हैं। अतः इनमें जन्मजात समानता है।

चाहे नेता बड़ा हो या छोटा, सभी में उपर्युक्त गुण समान रूप से विद्यमान होते हैं केवल परिमाण का अन्तर होता है। बड़ा नेता बड़ा कलाकार होता है छोटा नेता छोटा कलाकार। अपने-अपने क्षेत्र में सभी नेता अपनी कलाओं का प्रदर्शन करते हैं और लोगों से पुरस्कार प्राप्त करते हैं। इस प्रकार नट, नर्तक और नेता के कार्यकलाप समान हैं। कई अनपढ़ नेता भी इतने उच्च-कोटि के कलाकार होते हैं कि वे पढ़े-लिखों को बुद्धू बना डालते हैं। यूँ तो नेता जनता का सेवक होता है, मुफ्त काम करता है। केवल कला द्वारा ही वह धन कमाता है कोठी बनाता है, विदेशों में धन जमा करवाता है। वास्तव में धन तो नेता के पाँव की मैल है। पहले पैसा कारीगर के हाथ का मैल होता था। आज वह कारीगर के हाथ से छूटकर नेता के पाँव को जा चिपका है।

गाँव की राजनीति में पंच-सरपंच के अतिरिक्त खड़पंच भी होता है। खड़पंच सभी को मात करता है। नेताओं में भी कई खड़पंच होते हैं जो जीतने और और हारने की—दोनों ही स्थितियों में नेता बने रहते हैं। इन्हें परमानेण्ट अर्थात् परमानन्द नेता कहा जा सकता है। कुछ नेता टैम्परेरी होते हैं। ऐसे नेताओं के पीठ पीछे चपरासी भी कह डालते हैं कि इन नेताओं से तो हम ही अच्छे, क्योंकि हमारी नौकरी तो पक्की है। कैसा जमाना आ गया है कि कच्चा आदमी पक्के आदमी (पक्की नौकरी) को धमकाता है।

राजनीति का मेला नंगों का नृत्य है। अतः एक नेता दूसरे नेता की बुराई को मन में छिपाकर रखता है और समय पर प्रकट करने की धमकी देता है। पोल खुलने के भय से सभी नेता एकता के सूत्र में बँधे रहते हैं। कहा भी है कि एकता में बल है। वे इस उक्ति पर अक्षरशः पालन करते हैं। कलियुग में केवल तीन श्रेणी के प्राणियों में एकता होती है। हीजड़ों की एकता, गुण्डे-बदमाशों की एकता तथा नेताओं की एकता। यही कारण है कि भरे बाजार में गुण्डा शरीफों को लूट लेता है, क्योंकि शरीफों में एकता नहीं होती। नेता के स्वभाव में भी कुछ वैसी ही विशेषता है।

सन्तों ने कहा है कि मानव को सदा जागृत अवस्था में रहना चाहिए। नेता

उनके उपदेश का पूर्णरूपेण पालन करता है। नेता का दुर्भाग्य है कि उसे अपने विरोधियों से सतर्क रहना पड़ता है और अपने दल के लोगों से भी। थोड़ी-सी नींद भी आयी, तो उसकी कुर्सी गायब। अतः कुर्सी की चौकसी रखना नेता का परम कर्तव्य है। कुर्सी है तो उसका मान और सम्मान है, बिना कुर्सी के नेता दो कौड़ी का।

यह है नेता जी का रूप, रंग और ढंग। यदि आप में ये गुण विद्यमान हों, तो नेता बन जाइए। जनाब, इससे बढ़कर सुख आपको स्वर्ग में भी नहीं मिलेगा। यही कारण है कि नेता कभी इस लोक को छोड़ना नहीं चाहता। उसके लिए मृत्यु-लोक ही स्वर्ग-लोक है। कान्त-कामिनी कमल की प्राप्ति उसे यहीं हो जाती है। वास्तव में नेता विष्णु का अवतार है, लक्ष्मी उसकी अर्धाङ्गिनी है। यदि आप में नेता बनने के गुण नहीं, तो नेता की पूजा कीजिए। आप भी स्वर्गवासी बनेंगे।

* * *

नेता जी के आन्दोलन

जगत राम जगत

शायद अब कोई भी यह नहीं जानता कि नेता जी का असली नाम क्या था। लोग-बाग उन्हें नेता जी के नाम से ही जानते और पुकारते हैं।

नेता जी न केवल शाही ठाठ का जीवन व्यतीत कर रहे हैं, बल्कि उनकी ख्याति भी दूर-दूर तक फैली हुई है। थाने-कचेहरी के छोटे-मोटे काम तो वे पलक झपकते ही करवा डालते हैं। गाँव-देहात के जाने कितने लोग हैं, जो हर रोज उनसे मिलने के लिए आते रहते हैं। जब कोई मन्त्री या बड़ा नेता शहर में आता है, तो यह हो नहीं सकता कि उनसे मिले बगैर चला जाये। इससे भी लोगों पर उनका अच्छा प्रभाव और रोब कायम हो चुका है।

उनके एक आम आदमी से नेता जी बनने की कहानी भी बड़ी रहस्यमयी और दिलचस्प है। जब वे अपने अतीत जीवन पर दृष्टिपात करते हैं, तो उन्हें यह सोचकर बड़ा विस्मय होता है कि लोगों ने कुछ वर्षों में ही उन्हें क्या-से-क्या बना डाला। जमीन से उठाकर आसमान पर बिठला दिया।

नेता जी ने मेट्रिक की परीक्षा में चार बार अनुत्तीर्ण होने का कीर्तिमान स्थापित करके स्कूल छोड़ दिया था। घर की आर्थिक तंगी के कारण महीनों तक नौकरी की तलाश में मारे-मारे फिरते रहे थे, लेकिन नौकरी थी कि एक बेवफा प्रेयसी की तरह उनके निकट आने से कतराती रही थी।

उन्हीं दिनों उनके जीवन में एक ऐसा हादसा पेश आया कि जिससे उनके जीवन की धारा ही बदल गयी।

इतवार का दिन था। नेता जी, जो उन दिनों शिब्बू नामक आवारा लड़के के रूप में जाने जाते थे, सिनेमा के टिकट ब्लैक में बेचकर घर लौट रहे थे। उन्होंने देखा——लक्ष्मी नारायण मन्दिर के पास शराब के एक ठेके पर लोगों की भीड़ जमा है और काफी शोर-गुल हो रहा है।

फिर क्या था, नेता जी भी तमाशा देखने की गर्ज से वहाँ जा पहुँचे। तभी कुछ लोगों ने शराब के ठेके में घुसकर शराब की बोतलों को तोड़ना-फोड़ना शुरू कर दिया। पुलिस के जवान, जो पहले से वहां मौजूद थे, हरकत में आये। पहले आंसू गैस के गोले छोड़े गये, फिर लाठी चार्ज किया गया। इसके बाद भी जब भीड़ पर काबू न पाया जा सका, तो गोली-चालन करना पड़ा।

नेता जी, जो मौके का लाभ उठाकर काफी शराब पी गये थे, शान्ति-भंग और तोड़-फोड़ के आरोप में गिरफ्तार कर लिये गये। पुलिस उन्हें जीप में बिठा-कर थाने में ले गयी।

नेता जी ने भले ही काफी शराब पी हुई थी, पर कोई यह आभास तक नहीं कर सकता था कि वे नशे में हैं। एक तो वे जमकर पीने वाले थे, दूसरे उनके कपड़े शराब से तर थे।

कुछ घण्टों के बाद लोगों की एक बड़ी भीड़ थाने के सामने आयी और लगी प्रदर्शन करने।

"हमारे नेता को रिहा करो!" के जोरदार नारे गूँजने लगे।

कुछ देर के बाद जिला मजिस्ट्रेट वहाँ आये और स्थिति का निरीक्षण करने के बाद लोगों की इस माँग को स्वीकार कर लिया कि उनके नेता को रिहा किया जाये।

नेता जी को रिहा करवाने के बाद लोगों ने उन्हें गली-बाजारों में घुमाया और उनकी जय-जयकार के नारे लगाये। सभी लोग नेता जी के साहस और पराक्रम की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा कर रहे थे, क्योंकि वही थे, जो गोली चालन के समय भी शराब की बोतलों को तोड़ते रहे थे।

इस तरह नेता जी के दिन फिरे और वे नशाबन्दी आन्दोलन के टॉप के नेता बन गये।

इतना ही नहीं, नशाबन्दी आन्दोलन के कार्यकर्त्ताओं ने नशाबन्दी समिति का पुनर्गठन करके नेता जी को प्रधान बना डाला।

नेता जी खुश थे। इससे अच्छी बात और क्या हो सकती थी कि चन्दे के रूप में भरपूर धन इकट्ठा करो और लोगों की नजरों में सम्मान भी मिले।

आन्दोलन ज्यों-ज्यों तेजी पकड़ता गया, नेता जी अन्य उप-नगरों और गाँवों

में भी जाने लगे। इस तरह वे सारे इलाके में नेता जी के नाम से मशहूर हो गये। वे कई बार जेल में भी गये, पर लोगों की जबरदस्त माँग पर तुरन्त छोड़ दिये जाते रहे। इससे भी उनकी ख्याति में चार चाँद लग गये।

दिन-रात नशाबन्दी आन्दोलन को गतिशील रखने वाले नेता जी, कुछ दिनों में ही प्रसिद्धि के चरम शिखर पर जा पहुँचे।

"महात्मा गाँधी के देश में शराब नहीं चलेगी!" यह उनका मुख्य नारा था।

वे जहाँ कहीं भी जाते, अपने प्रभावशाली भाषणों में यही कहते—"यदि पूर्ण नशाबन्दी लागू कर दी जाये, तो हमारे देश की बहुत-सी समस्याएं स्वयं ही हल हो जायें। शराब न केवल राष्ट्र का ही पतन करती है, बल्कि सभी प्रकार के रोगों और कंगाली का जन्म भी इसी से होता है। हर साल अरबों रुपये की शराब लोग पी जाते हैं। इतना धन देश के उत्थान के कार्यक्रमों पर खर्च किया जाये, तो कुछ सालों में ही कायाकल्प हो सकता है। बोलो, जयहिन्द!"

अपने हर भाषण के अन्त में वे 'जय हिन्द' कहना नहीं भूलते थे और यह सब इसलिए था कि लोग उनकी देश-भक्ति पर किसी तरह का सन्देह न करें।

नेता जी जहाँ कहीं भी जाते, फूल मालाएं पहनाकर लोग उनका स्वागत करते। उन्हें थैलियाँ भेंट की जातीं और नेता जी, जो अभी नौकरी की तलाश में मारे-मारे फिरा करते थे, जिन्हें पेट-भर खाना तक नसीब नहीं होता था, जो ब्लैक में सिनेमा के टिकट बेचते थे और दाव लगने पर किसी बदनसीब की जेब भी साफ़ कर देते थे, अब एक आदर्श नेता के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर गये थे।

देश में जब एमरजेंसी लगी, तो नेता जी के इस आन्दोलन को जबरदस्त धक्का लगा। सभी प्रकार के आन्दोलनों और प्रदर्शनों पर कानूनी पाबन्दी जो लगा दी गयी थी।

नेता जी कुछ दिन तो खामोश रहे, जैसे उनका वजूद ही दुनिया में न रहा हो। फिर बीस-सूत्री और पाँच-सूत्री कार्यक्रमों के प्रचार-प्रसार में जी-जान से जुट गये।

नशाबन्दी की बजाये अब वे नसबन्दी और नलबन्दी के प्रचारक बन गये। उनके भाषणों के विषय ही बदल गये। अब उनके भाषण इस तरह के होते—

"भाइयो और बहनो, देश की जनसंख्या यदि इसी अनुपात से बढ़ती रही, तो एक दिन ऐसा आयेगा, जब हमारे देशवासियों को भरपेट खाना, तन ढाँपने को कपड़ा और रहने को मकान तक नहीं मिलेगा। परिवार-नियोजन ही देश की सभी समस्याओं का एकमात्र हल है। नसबन्दी और नलबन्दी के आपरेशन करवाएं और अपने परिवार को सुखी और देश को खुशहाल बनाएं। बोलो, जय हिन्द!"

लेकिन, उनका यह कार्यक्रम भी ज्यादा समय तक नहीं चला। आपातकाल के खत्म होने पर देश में नये चुनाव हुए, तो हालात भी बदल गये।

लेकिन, नेता जी को इससे कोई अन्तर न पड़ा। इस अर्से में वे पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने फिर से नशाबन्दी आन्दोलन का श्रीगणेश कर दिया। नयी सरकार जो कई पार्टियों के संगम से मिलकर बनी थी, देश में पूर्ण नशाबन्दी की अनगिनत घोषणाएँ कर चुकी थी। नेता जी के लिए, यह माहौल पहले से भी कहीं ज्यादा साजगार था।

नेता जी के नये कार्यक्रम के बारे में की गयी घोषणा को सुनकर शराब बनाने और बेचने का धन्धा करने वाले भयभीत और आशंकित हो गये।

वे लोग नशाबन्दी आन्दोलनों के दुष्प्रभावों को जानते थे। उन लोगों ने नेता जी के सामने हाथ-पाँव जोड़े और भेंट चढ़ाकर उन्हें यह खतरनाक कदम उठाने से रोका।

नेता जी ने इस शर्त पर उनकी यह प्रार्थना और भेंटें स्वीकार कर लीं कि वे जब चाहेंगे, आन्दोलन की धमकी देकर उनसे धन प्राप्त करते रहेंगे।

सौदा महँगा नहीं था, इसलिए शराब का धन्धा करने वालों ने उनकी इस शर्त को सहर्ष स्वीकार कर लिया या कर लेना पड़ा।

नेता जी चैन से बैठने वाले जीव नहीं थे। वे अवसर की महिमा जानते थे और उसका पूरा-पूरा लाभ उठाने की कला में माहिर हो चुके थे।

उन्होंने एक नये प्रकार के आन्दोलन की बात सोची। विभिन्न राजनैतिक पार्टियों से मिलकर बनी सरकार के हिस्सेदारों में फूट पड़ चुकी थी और जूतियों में दाल बँटने लगी थी। किसी एक की वफ़ादारी भी यक़ीन के काबिल न रही थी। तब नेता जी ने अवसर को गनीमत जानकर उन नेताओं का साथ देना शुरू कर दिया—जिनके सिरों पर उस सरकार को गिराने के सेहरे बाँधे जाने थे।

नये लोग सत्ता में आये, तो नेता जी ने पैंतरा बदला और उनका विरोध करना शुरू कर दिया, क्योंकि देश का जनमानस भी उनके विरुद्ध हो चुका था और उन्हें अवसरवादी और दिशाहीन नेता समझा जाने लगा था।

इन परिस्थितियों में नेता जी की नेतागिरी को और ज्यादा फलने-फूलने और चमकने का मौका मिल गया।

नेता जी समझ गये कि देश के लोग बड़े भोले हैं। समय गुजरने के साथ-साथ अपने प्रति हुए सभी प्रकार के अन्याय और जुल्मों को भूल जाते हैं।

और जब देश में मध्यावधि चुनाव हुए, जिनका होना पहले से निश्चित हो चुका था, तो वे दिशाहीन नेता भी अपनी गद्दियों से हाथ धो बैठे।

कुछ दिन नेता जी मौन रहकर परिस्थितियों का अवलोकन करते रहे। भविष्य में किस प्रकार के कार्यक्रमों से लाभ होगा—इस पर सोच-विचार करते रहे। फिर देश में बढ़ती हुई गैरकानूनी, महँगाई और दंगे-फ़सादों के कारण उन्हें फिर से नाम-धन और ख्याति अर्जित करने का मौका मिल गया।

उन्होंने अपने होनहार बेटे से जो छात्र यूनियन का नेता था और उन्हीं के नक्शे-कदम पर चल रहा था, छात्र-छात्राओं की एक हंगामी मीटिंग बुलवायी और शहर में कोई बड़ा हंगामा खड़ा करने की गुप्त योजना बना डाली।

दूसरे दिन हजारों की संख्या में कॉलिज की छात्राएँ और छात्र शहर के गली-बाजारों में 'जिन्दाबाद—मुर्दाबाद' के नारे लगाते घूम रहे थे।

उनकी प्रमुख मांगें थीं कि शहर के सभी छवि-गृहों में उनके लिए सुरक्षित सीटों की संख्या बढ़ायी जाये और टिकटों के दाम भी कम किये जावें।

और, जब उनकी इन वाहियात किस्म की मांगों को नहीं माना गया, तो उन सबने सिनेमा-घरों पर प्रदर्शन शुरू कर दिये और एक भी फिल्म नहीं चलाने दी। इतना ही नहीं, कई सिनेमा-घरों में तोड़-फोड़ करके आग तक लगा दी गयी।

अन्त में सिनेमा के मालिकों को नेता जी की मध्यस्थता में समझौते के लिए विवश हो जाना पड़ा।

इससे नेता जी को किसी प्रकार का आर्थिक लाभ तो न हुआ, पर अपना महत्त्व प्रदर्शित करने का मौका तो मिल ही गया।

हाँ, उनके पुत्र को अवश्य यह लाभ हुआ कि वह छात्र-यूनियन का टॉप का नेता बन गया और लोगों में यह धारणा बन गयी कि वह छात्र-छात्राओं को लेकर कभी भी कोई हंगामा खड़ा कर सकता है।

इसके बाद नेता जी ने फैक्ट्री और कारखानों के मजदूरों पर अपना माया-जाल फैलाकर उन्हें भड़काया। उनमें गुटबन्दी पैदा की और हड़तालें करवा दीं और फिर उन ख़तरनाक परिस्थितियों का, जो उनकी अपनी ही पैदा की हुई थीं—जितना लाभ वे मध्यस्थ बनकर उठा सकते थे, उठाया।

वे न केवल मजदूर यूनियनों के नाम पर इकट्ठा किया हजारों रुपये का चन्दा ही हजम कर गये, बल्कि फैक्ट्रियों और कारखानों के मालिकों से पर्याप्त धन लेकर उनके बीच समझौता करवाने का श्रेय भी हासिल कर लिया।

अब नेता जी कोई नया आन्दोलन शुरू करने की योजनाएँ बनाने में लगे हैं। वह आन्दोलन किस तरह का और किन परिस्थितियों से होगा तथा उससे उन्हें कितना आर्थिक लाभ होगा, यह तो आने वाला समय ही बतायेगा। अच्छा, जय हिन्द !

* * *

कबीरा खड़ा बाज़ार में

नन्दलाल मेहता

कबीर एक बार फिर सरे बाजार खड़ा है। पाँच सौ बरस पहले भी बाजार में खड़े होकर "न काहू से दोस्ती और न काहू से बैर" के अन्दाज में कबीर ने सबकी खैर माँगी थी। आज भी वह सबकी खैर माँग रहा है।

मुझे कबीर का यह अन्दाज अच्छा लगता है। इसमें खतरा बिल्कुल नहीं है। न तो दोस्ती का दम्भ है और न ही बैर की विकलता। कबीर बाजार में होकर भी बाजार में नहीं है।

यह 'तटस्थ योग' की स्थिति है। इसे प्राप्त करना सुकर नहीं। लम्बी साधना की आवश्यकता है। क्रिया-भेद से इस साधना के तीन रूप हैं—आधिभौतिक तटस्थ-योग, आधिदैविक तटस्थ-योग और आध्यात्मिक तटस्थ-योग।

आधिभौतिक तटस्थ-योग का लक्षण है—देखकर भी अनदेखा करना। शास्त्रज्ञों ने इसे कहीं-कहीं 'शुतुरमुर्गी साधना' की संज्ञा भी दी है। इस पथ के साधक 'आत्ममुग्ध' साधक कहलाते हैं। इनके आस-पास कुछ भी घटता रहे—चोरी हो या फिर डकैती, लूट-पाट हो या फिर बलात्कार, हत्या हो या आत्म-हत्या—ये विचलित नहीं होते। यदि कहीं आप ने मानवीय गरिमा की चर्चा इनसे कर भी दी तो वे दार्शनिक मुद्रा में कहेंगे—"क्षुद्रताओं से ऊपर उठना सीखो। मनुष्य मरणधर्मा है। वह तो मरेगा ही। चाहे चोरी-डकैती, लूट-पाट और हत्या जैसे पराश्रित साधन से मरे या फिर आत्महत्या जैसे नितान्त आत्मनिर्भर साधन से।

इनकी आत्मनिर्भर मति सचमुच धन्य है। ऐसे ही गरिमामण्डित [illegible] पाकर अपमान भी सम्मानित हो उठता है। वे हर स्थिति में आत्ममुग्ध हैं, ठीक उसी धैर्यवान वक्ता की तरह जो मंच से धकिया दिये जाने के बावजूद इस तर्क से निज गौरववर्धन करता रहे कि, "धक्के ही तो दिये हैं, यहाँ तो कई बार जूते भी खा चुके हैं। धक्कों का क्या? वे तो यों ही भीड़ में भी लग जाते हैं।" आत्ममुग्धता की यह चरम साधना है। राष्ट्र ऐसे घनघोर साधकों के समक्ष नतशिर है। व्यक्तिगत सम्मान जैसे तुच्छातितुच्छ प्रश्न को राष्ट्रीय स्वाभिमान के साथ जोड़कर देखने वाले संकीर्ण मति लोगों को अभी इनसे बहुत कुछ सीखना है।

भीड़ में होकर भी भीड़ में न होना तटस्थ-योग का आधिदैविक रूप है। पिछले दिनों एक ऐसे ही परम साधक से मेरी मुलाकात हो गयी। देश के सौभाग्य से इस समय वे राजनीति में हैं। राजनीति में आने से पहले वे भीड़वादी समाज के अनासक्त सेवक थे। मेले-ठेले, पर्व-त्यौहार, जलसे-जलूस की भीड़ में सबकी जेबों के साथ समदर्शी भाव से धार्मिक व्यवहार करते थे। धर्म में अब भी उनकी आस्था है। पर, अब उनको भीड़ के पास जाना नहीं पड़ता, भीड़ स्वयं उनके पास चलकर आती है। वे अनासक्ति से स्वधर्म का पालन करते रहते हैं। भक्तों ने श्रद्धापूर्वक उनके 'स्वधर्म' का अखिल भारतीयकरण कर दिया है। उनसे मिलने पर अच्छा लगा। वे उत्साह से थे। राष्ट्र की समस्याएँ उनमें थीं, वे समस्याओं से बाहर थे। राजनीति पर श्रद्धापूर्वक चर्चा चली। इसी चर्चा के दौरान मैंने समाज में सुरसा-सम बढ़ती गरीबी पर अपनी ओर से चिन्ता प्रकट की। वे सुनकर भी निर्विकार बने रहे। फिर कहने लगे—मुझे तो कहीं भी दिखाई नहीं देती। कहाँ है गरीबी? मैंने कहा गरीबी मेरी जेब में है। आप चाहें तो...। वे खिसिया गये। बीच में ही हाथ पकड़कर निहोरा करते हुए बोले—हे—हे, आप तो लज्जा-वनत करते हैं।

निर्विशेष भाव से सबकी खैर माँगना तटस्थ योग का आध्यात्मिक सोपान है। यह सिद्ध अवस्था है। सबकी खैर माँगना निरापद तो है ही, इसमें व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा अधिक प्रतिष्ठित स्थिति पा लेता है। दूसरे सब बौने हो जाते हैं ठीक वैसे, जैसे बड़ी लकीर खींचकर पहले से खींची गयी लकीर को छोटा कर देना। हींग और फिटकरी कतई खर्च नहीं होने पर रंग चोखा हो जाता है।

हमारे एक मित्र ने इस सिद्धि को समूचा उदरस्थ कर लिया है। उनसे मिलने पर हर बार ऐसा लगता है कि वे कबीर की आत्मा से अभी-अभी मुलाकात करके लौटे हैं। आपसे रू-ब-रू होते ही वह आशीर्वादात्मक मुद्रा अपना लेते हैं। सर्वमंगलमयी भावना से हाथ उठाकर वे ऐसी वरदायी मुद्रा बनाते हैं कि आपके हाथ और उनके घुटनों में श्रद्धालु-श्रद्धेय सम्बन्ध जन्म लेने लगता है। उनकी

गद्‌गद्‌ वाणी का अजस्र प्रवाह आशीषछन्द बनकर लुढकता है। उन्हें विचलित करने की आप कितनी ही कोशिश कर लें, वे आशीष प्रदायिनी मुद्रा से नीचे ही नहीं आते !

मैंने कई बार निश्चय किया कि उनकी आशीषप्रदायिनी मुद्रा का आडम्बर तार-तार कर दूँ। लेकिन हर बार धैर्य मेरा हो चुका है। वे अपनी स्थिति से जरा भी नहीं खिसकते। मैं जितना खीझता हूँ, वे उतना ही तटस्थ हो जाते है। इस बार मुझे मिले तो मैं आवेश मे था। मैंने कहा—पता नही हमारे समाज का क्या होगा। जिधर देखो, भ्रष्टाचार है, रिश्वतखोरी है। मैंने देखा उनके चेहरे का स्मित्य भाव और गहरा हो गया है। मैं अधीर हो उठा। जवाब मे उन्होंने अर्ध-मुकुलित मुस्कान फेकी। तृप्त कबूतर की तरह दो-एक बार गरदन को दायें-बायें किया। फिर मैत्री भाव से समझाना शुरू किया—इसे रिश्वत न कहिए। यह तो आदान-प्रदान का सांस्कृतिक मामला है। 'इस हाथ दे, उस हाथ ले' का पारस्परिक सहयोग भाव है। सह अस्तित्व के लिए यह आवश्यक है। इतना कहकर वे 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' को शाश्वत मुद्रा में एक मन्त्र का उच्चारण करने लगे, जिसका भाव था—सबका मंगल हो। भक्त का मंगल हो। भगवान्‌ का मगल हो। निर्धन का मगल हो, धनवान्‌ का मंगल हो। दुर्बल का मगल हो, बलवान्‌ का मंगल हो। गुणहीन का मगल हो, गुणवान्‌ का मंगल हो। मंगल का भी मगल हो।

मुझे लगा कि एक बार फिर कबीर सरे बाजार आ गया है। पाँच सौ वर्ष पहले के कबीर ने भले ही सर्वहित के विशुद्ध आध्यात्मिक भाव से सबकी खैर माँगी हो किन्तु आधुनिक कबीर के लिए सबकी खैर माँगना एक मजबूरी है। आधुनिक होने की अनिवार्य शर्त है। वह सबकी खैर नही माँगेगा तो फिर उसकी खैर नही। इसलिए वह सबकी खैर माँग रहा है। चोर की खैर साध की खैर। किसी के नाराज होने का खतरा नही है। चोर भी खुश, साध भी खुश। फिर सबकी खैर में अपनी खैर भी तो है।

* * *

चुनाव-ऋतु-वर्णन

डॉ० मधुसूदन

गाँव का आसमान धूल से धुँधला हो गया है। बालक पूछ बैठा—"बाबू! यह फरवरी के महीने में बादल कैसे?" चौधरी आसमान देखकर चुप है। पण्डित उत्तर देते हैं—"यह ग्रहों की दशा है जिससे मौसम के सारे कानून उलट-पलट हो गये हैं।"

आगे पण्डित जी वैसे ही चुनाव-ऋतु-वर्णन करते हैं जैसे तुलसी दास किष्किधा-काण्ड में वर्षा-ऋतु वर्णन करते हैं।

जैसे राम और लक्ष्मण शुभ्र स्फाटिक-शिला पर बैठकर नीति की बातें कर रहे हैं, वैसे मन्त्री और सेक्रेटरी शुभ्र चाँदनी पर गाँधी-नेहरू वाली मुद्रा में बैठकर चुनाव की राजनीति पर विचार कर रहे हैं।

वर्षाकाल में आसमान जैसे बादलों से भर उठता है वैसे ही चुनाव-काल में गाँवों का आसमान जीपों-कारों की गर्द से भर उठता है।

जैसे बादल देखकर मोरों के समूह नाच उठते हैं, वैसे ही नेतागणों को जीपों-कारों में दौड़ते हुए देखकर देश के भावी कर्णधारों के समूह ताली बजा-बजाकर नाच उठते हैं।

बादलों के घनघोर गर्जन से राम का मन सीता के बिना काँप उठता है वैसे ही पार्टी के बागी उम्मीदवारों के घनघोर भाषण से पार्टी अध्यक्ष का मन कुर्सी छिन जाने की आशंका से काँप उठता है।

जैसे आकाश में कभी-कभी दामिनी दमकती है और कभी बुझ जाती है, वैसे ही उम्मीदवारों की प्रीति-आस्था पार्टी के प्रति स्थिर नहीं है।

जैसे पानी से भरे बादल धरती पर झुक-झुक आते है, वैसे ही भूतपूर्व मन्त्री भी आम वोटर को झुक-झुककर सलाम करते है।

जैसे पहाड़ वर्षा की बूंदो की चोटो को चुपचाप सहते है, वैसे ही विधान सभा मे लौटे मन्त्री उम्मीदवार बनकर जनता के भ्रष्टाचार के आरोपो को सहर्ष सहन कर रहे है।

वर्षा ऋतु मे जैसे छोटी-छोटी नदियाँ इतराकर चलती है, वैसे ही वर्करगण थोड़ा-थोड़ा चन्दा लेकर, थोड़ा-थोड़ा भाषण देकर इतरा-इतराकर चलते है।

जैसे बादलो से गिरता स्वच्छ पानी जमीन पर पड़कर मटमैला हो जाता है, वैसे ही बगुला-पार्टी कुर्ते-पाजामे हल्के की धूल व घबराहट के पसीने से मट-मैले हो जाते है।

जैसे आस-पास से पानी सिमटकर सूखे तालाबो मे आने लगता है, वैसे ही उम्मीदवारो के खाली ऑफिसों मे दूर-दूर के रिश्तेदार सिमट-सिमटकर आने लगते है।

छोटी-छोटी नदियाँ मिल-जुलकर समुद्र की ओर जाने लगती है, वैसे ही छोटी-छोटी पार्टियाँ चुनावी समझौतो के लिए मिल-जुलकर राजधानी की ओर चलने लगी है।

जैसे मैदान हरी घास मे भर जाते है और उसमे पगडण्डी ढूँढनी मुश्किल हो जाती है, वैसे ही पोस्टरो और घोषणा-पत्रों के आश्वासन चारो और छा गये है कि वोटरों को अपना असली नेता ढूँढना मुश्किल हो रहा है।

जैसे मेंढकों के टर्राने की आवाज से सभी दिशाएँ गूँज उठती है, वैसे ही लाउडस्पीकरो के टर्राने की आवाज से सभी दिशाएँ गूँज उठी है।

वृक्षो पर जैसे नये-नये पत्ते उग आते है, वैसे ही शहर-शहर में नये-नये नेता उग आये है, उनके दफ्तर खुल गये है और उन पर नये-नये रग-बिरंगे बैनर व झण्डे उग आये है।

वर्षा ऋतु मे आक और जवास के पौधे बिना पत्तो के हो जाते है, वैसे ही उम्मीदवारो के दिल-दिमाग बिना आदर्शो-सिद्धान्तों के हो गये है।

पानी बरसने पर कही भी धूल देखने को नहीं मिलती, वैसे ही भाषण बरसने पर सच्ची बात सुनने को नही मिलती।

वर्षा के बाद जैसे धरती फसल आदि मे हरी-भरी और आकर्षक हो जाती है, वैसे नगर के बाजार माल (चीनी-सीमेंट-डालडा-मिट्टी तेल आदि) से हरे-भरे और आकर्षक हो जाते हैं।

बारिश की रात के अंधेरे में जहाँ-तहाँ जुगनुओ के झुण्ड चमकने लग

जाते है, वैसे ही मुहल्लों में रात के समय बिजली के [illegible] चमकने लग जाते हैं।

अधिक वर्षा होने पर नदियाँ अपनी सीमा तोड़कर बहने लगती हैं, वैसे ही नेताओं का मन जीत की अधिक आशा से सारी सीमाएं तोड़ देता है और परिणामस्वरूप उनके वर्कर आचरण की सारी मर्यादाएं भंग कर सड़कों पर मंडराने लगते हैं .

चतुर किसान जैसे खेती निराने में जुट जाते है, वैसे ही नेतागण सामाजिक समस्याओं को समूल उखाड़ फेंकने का आश्वासन देने में जुट जाते हैं।

चक्रवाक पक्षी की आवाज कहीं सुनने को नहीं मिलती, वैसे ही नेताओं के मुँह से जनता के लिए कटु वचन सुनने को नहीं मिलते।

जैसे ऊसर धरती पर वर्षा का कोई असर नहीं होता, उसी प्रकार जनता की शिकायतों-प्रार्थनाओं का नेताओं के अन्तःकरणों पर कोई असर नहीं होता और न नेता के आश्वासनों का जनता के हृदय पर।

वर्षा ऋतु में धरती जैसे विभिन्न जीव-जन्तुओं से भर जाती है, वैसे ही वायुमण्डल विविध वायदों-नारों से भर जाता है।

दिन में कभी-कभी बादलों के छा जाने से अंधकार हो जाता है और बादल छंट जाने से उजाला हो जाता है, उसी प्रकार जब उम्मीदवार के मन में निराशाजनक समाचार छा जाते हैं तो उसका मन अंधकारमय हो उठता है और जब आशाजनक समाचार सुनता है तो उसके मन में सौ-सौ वाट के बल्ब जल उठते हैं।

बारिश के मौसम में कभी-कभी भयंकर आँधी आती है और देखते-देखते भारी-भारी बादलों का नाम-निशान मिट जाता है, वैसे ही चुनाव के मौसम में जनमत की भयंकर आँधी से भारी-भरकम नेताओं का राजनीति के आसमान से नाम-निशान मिट जाता है।

* * *

दोऊ मुट्ठी भींचिए

रोहिणी

बात बहुत पुरानी है। हिन्दी साहित्य के भक्ति-काल की। सन्त कबीर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' मानकर भारत-भ्रमण को निकले। रास्ते मे आयी नदी को पार करने के लिए एक नौका मे बैठ गये। शुभ मुहूर्त में यात्रा का श्रीगणेश हुआ, पर 'कुदरत की गति न्यारी'। हँसी से किलकने सभी यात्रियो के मुखारविन्दो के सम्पुट बन्द हो गये और चिल्ल-पौं, चीख-पुकार शुरू। कारण ? कारण यही कि नाव के पेंदे मे जाने कैसे एक छेद हो गया। अब छेद हुआ तो नाव का पानी नदी मे चढ आया। छोटी-सी अबला किश्ती बेचारी अपना सन्तुलन खो बैठी और लगी डूबने। नौका के अधिकारी और मल्लाहों की देखा-देखी अकर्मण्य यात्री भी दोनो हाथो से नाव का पानी बाहर फेंकने लगे। आखिर प्राणो का मोह किस निर्मोही को भी न होगा ? अब अगर गुरु गोबिन्द सिंह सवा लाख से एक भिड़ाने पर भी डंके की चोट पर विजयश्री हासिल कर सकते है तो भला एक निष्प्राण छेद की ढेरो यात्रियों के सामने क्या चलती ? बेचारी ने बिना चों-चुपड़ किये घुटने टेक दिये और 'सज्जन' यात्रियों ने नौका को डूबने से बचा लिया। बस, अंधे को क्या चाहिए—दो आँखे। कविश्री कबीर ने तुरन्त अपने मानस-पटल पर इस दृश्य को अंकित कर लिया और सुअवसर आने पर लिख भी डाला—

'दोनों हाथ उलीचिए, यही सज्जन को काम।'

हमने जब इस पंक्ति को पढ़ा तो श्रद्धा से नत होते हुए बोल पड़े—"भई, कवि हो तो कबीर जैसा। क्या लिख मारा है—'ज्यों जल बाढ़ै नाव मे, घर में बाढ़ै दाम। दोनों हाथ उलीचिए यह सज्जन को काम।' कहाँ तो अदना-सी नाव

और कहाँ विष्णुप्रिया देवी लक्ष्मी की शक्ति बन : क्या मेल मिलाया है दोनों का कॉकटेल-सा । धन्य हो कवि, धन्य हो ।"

आज के कवि और पहले के कवि में एक विशेष समानता यही है कि सबने 'साहित्य समाज का दर्पण है' को चरितार्थ किया है। अब अगर आज का कवि नायिका के गुस्से को 'बिजली के स्टोव-सा सुर्ख' बतलाता है और सध्या को 'ऑपरेशन टेबिल पर पड़े मरीज-सा' तो प्राचीन कवि भी ऐसी उपमाओं से मुँह नहीं मोड़ता था । कबीर ने नौका का उदाहरण दिया तो ठीक है ऐसा तब उनके साथ घटित भी हुआ । पर शंका तो अन्त तक यही बनी रहती है कि वह तथाकथित व्यक्ति 'सज्जन' कैसे हुआ ? नाव से पानी उलीचने में तो माना कि वह सज्जन है क्योंकि दूसरों की जान बची, पर धन उलीचने में सज्जन क्योंकर ? कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि चाहे कवि ने मसि-कागद न छुआ हो, पर अलकारों से चक्कर में वे बड़ों-बड़ों को भी अँगूठा दिखा दिया करते थे। उन्होंने अपने इस दोहे में 'सज्जन' शब्द का प्रयोग किया है और स्पष्ट है कि सज्जन साधारण जन को ही नहीं, देवताओ को भी प्रिय होता है। यानी कि वह हुआ—देवानाम् प्रियम् । अब देखिए न, 'देवानाम् प्रियम्' कहकर उन्होंने एक तीर से दो शिकार कर लिये। सज्जन भी कह दिया उसे और आज का 'देवानाम् प्रिय' भी। समझे आप ? जी हाँ, 'देवानाम् प्रिय' आज सम्राट् अशोक जैसे महान् को नहीं, बल्कि वज्रमूर्ख को कहते है।

यह तो हुई 'सज्जन' की मीमांसा। किन्तु बात तो कोल्हू के बैल की तरह घूम-फिरकर फिर वहीं रह गयी कि आखिर वह तथाकथित व्यक्ति सज्जन क्यों ? माना कि धन हाथ का मैल है, ठीक है। पर इसका क्या मतलब कि खुद तो खुदा के आगे दाने-दाने के लिए झोली फैलाएँ और अपनी 'मैल' सब लोगों को बाँट दे । भई, ऐसे व्यक्ति को तो निःसंकोच हर कोई 'पागल' का ही खिताब देगा। पर कबीर साहब भी कोई कच्ची गोलियाँ न खेले थे। जानते थे अगर कभी कलियुग मे कोई बाल की खाल निकालने वाला मिल गया तो वह अपने अकाट्य तर्कों से उनकी बोलती बन्द कर देगा। तब उन्हे अपना कोई गवाह तो प्रकट करना ही पड़ेगा, वर्षों से चली आ रही अपनी साख को बनाये रखने के लिए। और उन्होंने अपना गवाह बनाया मीदास को। मीदास को भला कौन नहीं जानता ? हुआ यह कि एक बार राजा मीदास निन्यानबे के फेर मे पड़ गये। अब भई, यह निन्यानबे का फेर तो बड़े-बड़े साधु-सन्तों को नही छोड़ता और फिर मीदास की तो बिसात ही क्या ? इस निन्यानबे के फेर की भी एक बड़ी दिलचस्प कहानी है। एक कोई सन्त किस्म के दम्पत्ति थे। बड़े ही नेक और सन्तोषी। 'रूखी-सूखी खाय के ठण्डा पानी पी'—सो रहते। हालत यह थी कि पड़ोसी 'कोठी वाला रोय और छप्पर वाला सोय'। सो कोठी वाला उन्हें भी रुलाने की 'स्कीम' बनाने लगा। तब उसने

—न —न न्म्प न के —ाल म रो न निन्यानबे सिक्का का थला फ्कना शरू क दी। फल यह हुआ कि उस दम्पत्ति ने अपना पेट काटकर निन्यानवे को सौ बनाना शुरु कर दिया और भई, जैसा कि रिवाज है सौ के हजार, हजार के लाख, लाख के आदि आदि। कुल मिलाकर परिणाम यह निकला कि उनका सुख-चैन सब चौपट हो गया। बस, ऐसी ही धुन मीदास को लग गयी कि कुबेर भी मेरे धन को देखकर पानी भरने लगे। सो आव देखा न ताव, तपाक से तपस्या शुरू कर दी। ब्रह्मा थे सतयुग के। बेचारे क्या जाने कि 'करप्ट' दिल क्या होता है। जल्दी ही खुश हो गये—'वत्स! माँगो, क्या वर माँगते हो?' अब मीदास भी कोई कच्चा खिलाड़ी न था। पहले तो टाल-मटोल करता रहा कि बस, मैंने तो आपके दर्शन पाने के लिए ही तपस्या की थी। फिर अन्त में जैसे मजबूरी दिखाता हुआ बोला—"अब अगर आप विवश कर ही रहे हैं तो मुझे यह वरदान दीजिए देव, कि मैं जिस भी वस्तु को स्पर्श करूँ, वही स्वर्ण बन जाये।" देव 'तथास्तु' का लम्बा डकारा भर अलादीन के जिन्न की भाँति जाने कहाँ गायब हो गये। मीदास साहब के पाँव तो अब जमीन पर पड़ ही नहीं रहे थे। अपने महल की दीवारों, खिड़कियों, छतों को सोने का तो बनाया ही, बाग-बगीचे को भी सोने से ऐसा चमकाया कि स्वयं विश्वकर्मा भी लज्जा गया उसका प्रासाद देखकर। काफी उछल-कूद की उसके तो पेट में भी चूहों ने उछल-कूद मचानी शुरू कर दी। ज्यों ही खाने को हाथ लगाया, वह सोने का बन गया। राजा को तो जैसे काठ मार गया। लेने के देने पड़ गये। सोने से तो पेट भर नहीं सकता था। आखिर किस राजा-महाराजा ने प्रजातन्त्रीय कनक को छोड़कर राजतन्त्रीय कनक पेट भरा है? बेचारा बड़ा रोया-धोया, पश्चाताप किया, फलस्वरूप पुनः ब्रह्मा ने प्रकट होकर उससे वह वरदान वापस ले लिया। इस सारी घटना से उसकी आँखें खुल गयीं और तब उदारता से उसने दोनों हाथों से सोना उलीचना शुरू कर दिया और लोगों में वह 'सज्जन' बन गया।

कबीर ने जब इतने ग्रन्थ लिखे तो स्पष्ट है कि वह एक अच्छे-खासे 'ऑबजर्वर' थे और एक सामान्य निष्कर्ष के साथ उन्होंने 'दोनों हाथ उलीचने' को 'सज्जन को काम' बताया। अब आप ही बताइए, कबीर की पोजीशन मजबूत है या नहीं। यह ठीक है कि अपना 'हम्मीरहठ' लेकर आप आज भी 'सज्जन' यानि कि 'देवानाम् प्रिय' को अशोककालीन देवानाम् प्रिय न मान उसके आधुनिक रूपान्तर को ही मानें।

वैसे आज की पीढ़ी और पुराने लोगों की विचारधारा एकदम विपरीत है। धन को दोनों हाथों से उलीचने को आज के व्यक्ति ने 'एबनार्मल' बताया ही, बेचारे वृन्द महोदय को भी अपनी आलोचना की चपेट में ले लिया। बस, दोष इतना ही था कि कभी अज्ञानतावश लिख दिया था उन्होंने—"सरस्वती के भण्डार की,

बढ़ी अपूरब बात । ज्यों ज्यों खर्चे त्यों त्यों बढ़े, बिन खरचे घटि जात । आज के विद्यार्थी ने जब यह पढ़ा तो बड़ा ही कौतिल हुआ कि पुराने लोगों ने हमें मूर्ख बनाने के लिए ही यह सब लिखा है। भण्डार चाहे सरस्वती का हो या लक्ष्मी का, वह तो खर्चने से घटेगा ही, बढ़ेगा कैसे ? यह बात उनके गले न उतरी। 'सत्य वद, प्रियं वद' का उपदेश देते-देते कैसे सत्य को भूल गये हमारे पूर्वज—उसने सोचा और इस दोहे का 'बायकाट' कर दिया। गलती विद्यार्थी की भी नहीं क्योंकि पलने से ही उसने यही देखा है कि धन और ज्ञान की तो बात ही दूर, कोई अपने शरीर की मैल तक को दोनों हाथों से नहीं उलीचता। वैसे उसका इस विषय में विशेष योगदान यह माना जा सकता है कि उसने लक्ष्मी और सरस्वती का मेल किया, सदियों से चले आ रहे बैर और द्वेष को आँच दिखा दी। कैसे ? उहूँ, अरे भई देखा नहीं क्या, आज का अरबपति क्या मज़े से दर्शन अथवा विज्ञान की पुस्तकों का विमोचन करता है या फिर सरस्वती का आराधक कोई विद्वान् चटखारे ले-लेकर 'फाइव स्टार होटल' में जलपान करता है।

बात यहीं तक सीमित रहती तो शायद अच्छा ही होता, पर हम पर न जैसे भूत ही सवार हो गया कि हम भी अपने ज्ञान को दोनों हाथों से उलीचकर श्रोता को आक्रान्त कर दें। सो पल भर की भी देरी किये बिना तुरन्त अपने एक परिचित के पास पहुँच गये और लगे कबीर महोदय की प्रशस्ति करने। परिचित बन्धु हमारे बड़े ही धनाढ्य थे और सिद्धान्त था 'चमड़ी जाये पर दमड़ी न जाये'। उन्हें लगा हम उनका मजाक उड़ा रहे हैं और अपना पारा सातवें आसमान पर चढ़ाकर बोले—"पता नहीं क्यों बाबा आदम के जमाने की बातों को रट-रटकर अपना दिमाग खराब करने पर तुली हो। अभी स्वतन्त्र हो न। गृहस्थी का जुआ नहीं है सिर पर। तभी इतनी टें-टें लगा रखी है। एक बार जो खुद कमाकर उलीचने की बात आयी तो नन्हू की तरह साफ मुकर जाओगी।"

"नन्हू ? कौन नन्हू ?" हमारा प्रतिप्रश्न था।

"अरे वही, जो इस-उससे पैसे माँगकर रोज बिना हिचकिचाये कुएँ में डाल आता था। पर एक बार जब खुद कुलीगिरी करके अपनी रोजी कमायी और हमेशा की तरह उसे कुएँ में डालने की बात आयी तो जानती हो क्या हुआ ? लड़ पड़ा वह कि मैं तो कमाता-कमाता, लोगों का सामान उठाता मर गया और आप कहते हैं—कुएँ में फेंक दूँ। और इधर एक आप हैं जो फरमाती हैं कि धन को दोनों हाथों से उलीच दो। अरे भाई, नाव अपनी जगह है और पैसा अपनी जगह। दोनों में तुलना कैसी ? एक बात गाँठ बाँध लो कि नाव का पानी बाहर उलीचने से भले ही लोग 'सज्जन' कह दें, पर अगर धन को उलीचना शुरू किया तो गृहस्थी की नौका तो डूबेगी ही, लोगबाग भी पागल कहने में न चूकेंगे। अब सान को ही लो। तुमसे कहीं ज्यादा ही समझदार है। पैसे की कीमत जानता है, ला

खज़ाने पर कुण्डली मारे बैठा रहेगा। है कोई माई का लाल जो उसके जीते जी एक पैसा भी इधर से उधर कर दे।"

लेकिन, हमने उनका प्रतिवाद करते हुए कहा—"लेकिन मै अपनी नही, कवि कबीर की बात कर रही हूँ।"

"ओह ! हैल विद यू एण्ड योर कबीर", परिचित महोदय की भयंकर गर्जना ने बात को दबाया तो मारे डर के हम सिर पर पाँव रख नौ दो ग्यारह हो गये।

खैर साहब, बड़ी कोफ़्त हुई उस वक्त अपने पर भी और विश्व भर के वैज्ञानिकों पर भी कि स्वर्गलोक तक टेलीफोन के कनैक्शन वगैरह क्यों नही जोड़े अब तक। अब देखिए न, ऐसी सुविधा होती तो पल भर की भी देरी किये बिना ट्रंक-कॉल करके कबीर जी को सारी इत्तिला दे देती। यह भी सुझा देती कि यदि कभी हमारे मृत्युलोक की सैर का प्रोग्राम बनाकर स्वर्गलोक से निकले तो यहाँ आकर भूल से भी इस दोहे को अपना न कहे। करे तो बस इतना कि चुपचाप किसी पब्लिशर के पास जाकर अपनी 'साखियाँ' निकलवा ले और चुपके से दोहे की पंक्तियाँ बदलकर लिख दें—

"ज्यों सुख बाढ़ै राज में, घर में बाढै दाम।
दोऊ मुट्ठी भीचिए, जब लगि घट मे प्राण।"

मान न मान मैं तेरा मेहमान

डॉ० रणजीत सिंह

न जाने किस यायावर, फक्कड़ प्रवर, औलिया और क्रान्तदर्शी मनुष्य ने मेहमान शब्द को बड़ी फुर्सत में घड़ा था। इस शब्द के हिन्दी रूप अतिथि ने तो अपने सांस्कृतिक परिवेश में चिपककर युगों-युगों तक न जाने कितने लोगों का पेट पाला है। सम्भवत: इस शब्द का निर्माता उसकी गुसैल पत्नी द्वारा प्रताड़ित होकर महाभिनिष्क्रमण के बाध्य हो गया हो अथवा यह शब्द किसी निठल्ले और आलसी दिमाग की उपज हो अथवा किसी सण्डे-मुसटण्डे मूसलचन्द की नौ टके की बात हो, परन्तु इतना सत्य अवश्य है कि यह उपज तीखी, पैनी और ठीक निशाने पर चिपकने वाली है।

मेहमान के नाराज़ होने का भय बॉस (अधिकारी) के नाराज़ होने से भी अधिक ख़तरनाक है। यह लोक-परलोक और परमेश्वर के बिगड़ने के भय से भी अधिक जानलेवा और अपमानदेवा है। क्या कहना उस पी-एच०डी० का ? जिसने कुछ क्षणों की खोज में यह लिख डाला कि अतिथि जिसके घर से निराश होकर लौट जाता है, वह उसके सारे-के-सारे पुण्य लेकर पाप छोड़ जाता है। राजा रूसे अपनी नगरी ले पर मेहमान रूसे महिमा ले। क्या अचूक निशाना ? क्या सटीक ठिकाना ? नकारा लोगों के लिए कितना सुन्दर रामबाण। हल्दी लगे न फिटकरी रंग भी चोखा होय और पेट की चिन्ता से कोसों दूर।

तीर निशाने पर लगा और घर-बार से बेकार लोगों के पौ बारह। वे जहाँ-तहाँ मेहमान बनकर असमय-कुसमय पधारने में अपना गौरव दूसरे की अग्नि-परीक्षा करने लगे। ठीक समय और निश्चित तिथि को आना अतिथि शब्द के

अय का अपमान जो ठहरा शायद वह सतयुग होगा जब लोग अपना सुख सुविधा को ताक में रखकर पराये सांडों को ही भोग लगाकर अपने को खानदानी समझते रहे हों। खानदानी समझें भी क्यों नही ? उस समय न मकान की समस्या थी और न भाषण की। उस समय न पार्टी-फण्ड की चिन्ता थी और न इन्कमटैक्स के दण्ड की। दिन-रात घी-दूध की नदियाँ बहती थी। बस घर फूंक तमाशा था। पर यह कलियुग है। सभी अपना-अपना स्वार्थ चाहते है। सतयुगी लोग बड़े मूर्ख थे। यदि समझदार होते तो डेरी खोलकर आधा पानी मिलाकर मालामाल हो जाते।

युग बदला, दिमाग बदला, भाव बदला और बदला रिश्ते-नातों का रख-रखाव। पेट भरने की रस्साकशी मे खानदान टूटे और पानदान छूटे। अब मेहमान के सिर पर आ पड़ी बिजली। पर इस बिजली की चमक-दमक में इसकी सूझ-बूझ बनी ही रही। वह शैतान की आँत की तरह हार मानने वाला नही था। उसने शतरंज की चाल चली और अपना मायावी मुखौटा पहना। इसने कही जमाई के रूप मे तो कहीं भौजाई के रूप मे, कही पार्टी के नेता के रूप मे तो कही अभिनेता के रूप मे, कही वक्ता के रूप में तो कही भविष्य वक्ता के रूप म, कहीं चुनाव के चन्दे के रूप मे तो कही प्रेम के फन्दे के रूप मे अपना रंग जमाना शुरू कर दिया।

मान न मान मै तेरा मेहमान के इस हठी स्वभाव को देखकर लोगो ने भी अपने तौर-तरीके बदले। उन्हे भी जमाने की हवा छू गयी। 'अपनी रक्षा मे ही सुरक्षा है' का पाठ गुनगुनाया। बस करने लगे मेहमानों की खेंचातानी। इस खेंचातानी मे उनके खैराती स्वभाव और पुराने संस्कार आड़े आये। नये और पुराने मानदण्डों के संघर्षी दौर मे जो समझौता हुआ, उसमें मेहमान शब्द की छीछालेदार हुई और उसका बखिया उधेड़ा गया। नयी संस्कृति के पुजारी इसके अस्तित्व को तो नही मिटा सके, परन्तु लोगों ने इसमे वर्गभेद करके कुछ राहत अवश्य अनुभव की।

पहले वर्ग मे अतिथि शब्द से ठीक विपरीत कुछ ऐसे मेहमानो के सम्बन्धो और रिश्तो को जमाया गया जिनके आने की तिथि निश्चित है। इनमे जमाई, मामा, बहनोई, इन्सपैक्टर, अफसर, पार्टी के नेता और अभिनेता आते है। इनके लिए आइए, पधारिए, विराजिए, तशरीफ रखिए आदि के मुलायम शब्दो के गाव तकिये लगाये जाते है। इनके हँसने पर ही हँसा जाता है और नाराज होने पर मुह लटकाया जाता है, मानो नानी मर गयी हो। इनकी आमद और खुशामद मे पड़ोसियों से प्याले, तख्तपोश और सोफा सैट तक बड़ी मिन्नत से माँगे जाते है। इन मेहमानों में भी इन्सपैक्टर और अफसर मान न मान मैं तेरा मेहमान बनकर

र्थ दूसर से बाजा मार लेना चाहते है। वे घर से कुछ लेकर जाते हैं परन्तु फिर न मन को भाते हैं

दूसरे वर्ग मे साली, पत्नी की सहेली, मित्र की पत्नी या बहन, गर्ल फ्रैण्ड, दफ्तर की मुँहलगी गर्ल टाईपिस्ट बेधड़क गिनाये जाते है। इनके लिए जरा बैठिए, अभी तो आये थे और अभी चल भी दिये, अभी तो आपसे बाते भी खुलकर नही हुई इत्यादि मनुहारी एवं फुसलाने वाले वाक्य शब्दो की लड़ी मे पिरोये जाते है। बताइए क्या पीयेगे। अरी गुड्डु की माँ! जरा शरबत तो बना लाओ! आदि के शरबती, मनोहारी, गुदगुदाहट और पुलकाहट वाले नाटकीय ढंग अपनाये जाते है। इन मेहमानो के साथ खाना-पीना, हँसना-हँसाना और बूझना-सूझना समानता के आधार पर होता है। भय नाम की कोई चिड़िया यहाँ चोच नही मार सकती। बस, एक मीठी, गुलाबी, शरारती, मुँहजोर मुस्कुराहट और पुलकाहट का मादकतापूर्ण सनसनाहटी वातावरण मन्द-मन्द अलसाता है।

तीसरे वर्ग मे पति के जाने-पहचाने पालथीमार यार, बूढ़ी सास, स्थानीय साप्ताहिक समाचार-पत्रों के डींगमार, अधकचरे और बचकाने सम्पादक, पुराने मकान मालिक या पुराने किरायेदार आते है। इनके दर्शन करते ही घरवाली का माथा ठनक जाता है, क्योकि ये मेहमान मान न मान मैं तेरा मेहमान बनकर बिना भोजन किये जाने का नाम नहीं लेते। जाने का नाम न लो राजा जी दिल बैठा जाये, इनका गुरु मन्त्र होता है।

ये अपने मेजबान के लिए इतने समर्पित होते हैं कि बिना फीस लिए जाने-अनजाने विषयों पर अपनी खोटी चवन्नी भुनाने का दुस्साहस कर बैठते हैं। पति इनके आने पर पत्नी के आगे भीगी बिल्ली बनकर दुम दबाकर म्याऊँ-म्याऊँ करता रहता है। वह पत्नी की त्योरियों को देखकर मनमरी आवाज मे बुदबुदाता हुआ कहता है—न जाने कहाँ से आन टपके। जाने का नाम तक नही लेते। मैं क्या करूँ? तुम ही कुछ तरकीब लड़ाओ। पर वे तो अखाड़े के पहलवान है, चित भी इनकी और पट भी इनकी।

चौथे वर्ग मे दूर-दराज के रिश्तेदार, मित्रों के मित्र, पुत्रों अथवा पुत्र-वधुओं द्वारा घर से प्रताड़ित दफ्तर के साथी, बस या रेल मे मित्र बने अजनबी चेहरे चिपका दिये गये हैं। ये मेहमान पुरानी मुलाकात अथवा पुरानी रिश्तेदारियों की टूटी बैसाखी का डगमगाता सहारा लिये घर की देहरी पर काँपते हुए क़दम रखते हैं। ये मानापमान के प्रति जागरूक होते हुए भी निष्काम योगी के समान, द्वैत की भूमिका से ऊपर उठकर सारा ही संसार हमारा घर है का अमोघ मन्त्र बाँटते फिरते है।

इन मेहमानों की परम्परागत एक विशेषता यह होती है कि इन्हे परिचय लेने या देने मे कोई हिला-हुज्जत नहीं होती। इनका सिद्धान्त होता है झट मंगनी

पट विवाह। झट डायरी निकाली और पट अता-पता नोट किया। वंशागत पण्डों के समान पता नोट करके मानो ये कोई अहसान कर रहे हों। औपचारिकता निभाना ये अपने स्वभाव के विरुद्ध समझते है। इनका घर मे स्वागत होता है या नहीं, इसकी इन्हे चिन्ता नही। यह शरीर तो बार-बार मिलता रहता है, परन्तु पराया अन्न मिलना बड़ा दुष्कर है, यही इनका मूल मन्त्र है। क्योकि ये ठहरे भौतिकवाद के अनन्य भक्त। हाँ, द्वार पर खडी घरवाली यह कहती अवश्य सुनाई पड़ती है—जान न पहचान, यहाँ मान मरले है। यह कोई धर्मशाला है। मेहमान के काटो तो खून नही फिर भी वह दुःख और सुख, लाभ और हानि मे समभाव रखता हुआ योगस्थ पुरुष की भाँति चिकने घड़े के समान निष्प्रभाव रहकर मौन साधे रहता है। अरे शाश्वत निर्लेप! ओ निर्विकार! मान न मान मैं तेरा मेहमान! तेरी अपमान सहिष्णुता पर बार-बार बलिहार! हाथ जोड़कर नमस्कार।

बुरे फँसे टी० वी० लेकर

डॉ० रूपनारायण शर्मा

इस बात से हम बखूबी वाक़िफ़ थे कि हमारी बेगम साहिबा यानी अर्द्धाङ्गिनी जी बहुत जल्दी ही टेलीविज़न की माँग पेश करने वाली है। उनकी इस माँग का इलम सबसे पहले उस वक्त हुआ जब उन्होंने अपने भाईजान के यहाँ से लौटते ही हमें यह खुशखबरी दी थी कि उनके भाईजान ने टेलीविज़न खरीद लिया है। इससे पहले वे जब भी अपने भाईजान के घर से लौटती थीं तो सबसे पहले उनकी खैरियत का समाचार सुनाती थी। लेकिन इस बार तो उन्होंने आते ही उस टेलीविज़न की तारीफ़ के पुल बाँधने शुरू कर दिये जो उनके भाईजान की बैठक की रौनक़ बढ़ा रहा था। उन्होंने इस बात की तारीफ़ नहीं की किस तरह उनकी भाभी साहिबा ने उनका इस्तिक़बाल किया, कितनी मेहमाननवाज़ी की और रूखसत के वक्त क्या तौफ़ा दिया। इस बार तो बेगम साहिबा ने घर में कदम रखते ही टेलीविज़न की मकबूलियत और मौजूदा जमाने में उसकी कारा-मदगी पर लम्बा-चौड़ा भाषण ही झाड़ डाला। हम हैरान थे कि बूढ़ा तोता दो-चार दिनों में ही भाषण कला में निपुण कैसे हो गया। हमारे पास टेप रिकॉर्डर नहीं था वरना सारा भाषण टेप कर लेते। आगे चलकर बच्चों को टेलीविज़न पर निबन्ध लिखने में काफ़ी मदद मिल जाती। कॉलेज में तालिम हासिल करते हुए हमने भी भाषण देना सीखा था पर महीनों जंगल में जाकर दरख्तों से मुख़ातिब होकर भाषण देने की मश्क़ करनी पड़ी थी।

भाईजान के यहाँ से लौटने के बाद बेगम साहिबा वक्तन्-फ़वक्तन् टेलीविज़न का ज़िक्र करने लगीं। एक दिन दफ़्तर से लौटा ही था कि पूछने लगी—"मैंने

कहा...टेलीविजन को हिन्दी मे क्या कहते है...काफी देर से दिमाग़ लड़ा रही हूँ पर वह लफ़्ज याद ही नहीं आ रहा।"

बेगम साहिबा की बात पर हमें कुछ हँसी आयी और यूँ बोल उठे—"आपके पास तो पहले ही थोड़ा-सा दिमाग है...अगर इसी तरह लड़ाती रही तो जल्दी ही खतम हो जायेगा ..बाकी रहा आपका सवाल...तो सुनिए—टेलीविजन को हिन्दी मे 'दूरदर्शन' कहते है यानी कि वह चीज जो दूर से ही देखने के लिए होती है। जैसे दूर के ढोल सुहावने होते है, वैसे ही टेलिविजन भी यूँ समझो कि दूर से ही सुहावना लगता है।

हमारी बात उनके पल्ले पड़ी या नहीं तो वे ही जाने। हम तो इतना ही जानते है कि टेलीविजन की ख्वाहिश उनके दिल में जड़ पकड़ चुकी थी। एक दिन उन्होंने हम से पूछा—"आप पिछले महीने दस दिन के लिए कानफ्रेन्स पर शिमला गए थे कितना टी०ए० मिलेगा उसका ?" बेगम साहिबा के इस सवाल का मतलब क्या था, हम अच्छी तरह समझते थे, लेकिन फिर भी भोले बनते हुए (वास्तव मे हम भोले ही है) मजाक के लहजे मे पूछ लिया—"क्यो बाजार मे कोई साडी-वाडी पसन्द तो नही आ गयी ?" यह सुनकर वे बोली—"साडी-वाडी की बात तो नही...आप ही कह रहे थे कि टी०ए० के रुपये मिलते ही ड्राइंग रूम के लिए सामान ख़रीदेंगे।" बेगम साहिबा की बात ख़तम होते ही हम बोल उठे—"हाँ...हाँ...हमने ठीक ही तो कहा था...रुपये मिलते ही कुछ चादरें और रंगीन पर्दे ले आयेंगे।" हमारी बात ने उनके दिल को काफ़ी कुरेद डाला और मजबूर होकर उन्हें साफ़-साफ़ कहना ही पड़ा—"मेरी मानो तो पाँच सौ रुपये देकर किश्तों पर टेलीविजन ही ले आओ—मन बहलाने का जरिया भी मिल जायेगा और घर की रौनक मे चार चाँद भी लग जायेंगे।" बेगम साहिबा के मन की बात हमने बड़ी चालाकी से उगलवा ली और चुटकी लेते हुए फिर बोले—"रौनक बढाने वाली बात तो किसी हद तक दुरुस्त है...पर दिल बहलाने के कई और भी तो तरीके हो सकते है मसलन घर में कोई बाल-बच्चा...हो...।" हमारी बात को बीच मे ही काटकर और कुछ झुंझलाते हुए कहने लगीं—"आप तो नश्तर पर नमक लगा रहे है। मैं तो सरकार की परिवार कल्याण योजना मे सहयोग दे रही हूँ और आप मजाक कर रहे है।" हमारी बात से खफा होकर बेगम साहिबा ने दो-तीन दिन तक टेलीविजन का जिक्र नही किया। चौथे दिन टेलीविजन बनाने वाली कम्पनियो के कई विज्ञापन हमारे सामने रख दिये। हमने भी उनका मन रखने के लिए (आख़िर वे भी तो पिछले दस साल से हमारा मन रखे हुए है) उनसे टेलीविजन लाने का वायदा कर लिया।

एक दिन हम शहर गये और टेलीविजन सेट ले आये। हम जैसे मामूली तनख्वाह पाने वाले मुलाज़िम ने साढे तीन हज़ार रुपयों का बन्दोबस्त कैसे किया

होगा इसका अन्दाजा लगाना कोई मुश्किल नहीं। यार-दोस्तों से कर्ज लेकर ही यह सब कुछ करना पड़ा।

हमने मजहबी और दूसरी किताबों में राजहठ और त्रियाहठ के किस्से पढ़ रखे थे। इससे पहले कि बेगम साहिबा की ख्वाहिश हठ की शक्ल इख्तियार करती हमने पहले ही घुटने टेक दिये। अगर हम घुटने न टेकते तो उन्हें भूख-हड़ताल करनी पड़ती। खुदा का शुक्र है घर में बच्चा पलटन नहीं थी वरना वे बच्चों को 'एक्सप्लाइट' करती और हमें घुटने टेकने के साथ-साथ अपनी वह नाक भी रगड़नी पड़ती जिस पर अभी तक हमने मक्खी नहीं बैठने दी थी। मुख्तसर बात यह कि हमने बेगम साहिबा को खुश करने के लिए टेलीविजन खरीद लिया।

गाँव में टेलीविजन का आना दुल्हन आने के बराबर था। टेलीविजन लाने से पहले हमने अपने घर को जिसमें दो कमरे और एक रसोईघर शामिल था, खूब सँवारा और सजाया। बैठक में कुर्सी की जगह सोफ़ा रख दिया। दीवार पर बड़ी-बड़ी वालपेन्टिंग्स लगा दीं। पूरे चार सौ रुपये का कालीन बैठक में बिछा दिया। टेलीविजन रूपी दुल्हन के स्वागत में यह सब कुछ करना ही पड़ा। जब घोड़ा ही खरीद लिया तो भला काठी क्यों न खरीदते। बेगम साहिबा तो दरवाजे पर बन्दनवार भी बाँधना चाहती थीं लेकिन हमने यह कहकर मना कर दिया कि बन्दनवार बाँधकर आप अपनी कमअकली का ही सबूत देंगी। आखिर गाँव में सभी गँवार तो नहीं। कुछ पढ़े-लिखे भी तो रहते हैं जो बेगम साहिबा की इस हरकत को देखकर उन्हें पागल कह देते।

पन्द्रह अगस्त के मुबारिक मौके पर हमने टेलीविजन का उद्घाटन करने का फ़ैसला किया। चौदह अगस्त को ही सारी तैयारियाँ हो चुकी थीं। गाँव के पण्डित ने ही पन्द्रह अगस्त का मुहूर्त (शादी का नहीं) निकाला था। टेलीविजन सेट के घर में आते ही बेगम साहिबा के चेहरे पर रौनक आ गयी। वे फूली न समायीं। उनके पाँव मारे खुशी के जमीन पर नहीं पड़ते थे। गाँव भर में जंगल की आग की तरह यह खबर फैल गयी कि वर्मा बाबू के घर टेलीविजन आया है और पन्द्रह अगस्त की सुबह चालू किया जायेगा। शहर के लोग तो बाजार से सब्जी की तरह टेलीविजन खरीद लाते हैं पर पड़ोसी को कानों-कान खबर तक नहीं होती। लेकिन गाँव में कोई सब्जी लाये तो पड़ोसी भाव पूछने जरूर आ जाते हैं।

पन्द्रह अगस्त के दिन सुबह सात बजने से पहले ही हमारी बैठक खचाखच भर गयी। घर में तिल नहीं थे वरना डलवाकर देख लेते कि तिल रखने के लिए भी जगह थी या नहीं। गाँव के सरपंच मेहरबान सिंह अपने चार बेटों—कुलतार सिंह, अवतार सिंह, सरदार सिंह और करतार सिंह को साथ लिये हुए पलंग पर बैठ गये थे। हमारे पड़ोसी नम्बरदार जगतार सिंह अपने दो वर्षीय साहबजादे के

साथ से सोफे पर बादशाह की मानिंद विराजमान थे। गाँव की अनेक औरतें घूँघट किये हुए कालीन पर जहाँ-तहाँ बैठकर बायसकोप को देखने के लिए टिकटिकी लगाये टेलीविजन को घूर रही थीं। गली के अनेक बच्चे अपनी-अपनी जगह जम कर बैठ गये थे। अपनी बैठक को इस तरह चहकती-महकती देखकर हमारी बेगम साहिबा ने अपनी फ़िराख़दिली का सबूत दिया और पाँच किलो लड्डू मँगवा लिये और प्रोग्राम शुरू होने से पहले बँटवा दिये। टेलीविजन की मुबारिकबाद देने वालों का मुँह मीठा न कराया जाये, यह कैसे हो सकता था। प्रोग्राम शुरू होते ही सभी ने जोर-जोर से तालियाँ बजायीं। बेगम साहिबा इतनी ख़ुश थीं मानो उनके बेटे की बारात ही सजी हुई खड़ी हो। सरपंच और उसके चार बेटों ने ख़ूब जोर लगाकर तालियाँ बजायीं। सरपंच के चारों बेटे अपने वालिद साहब के नक्शेकदम पर चलने वाले थे यानी जिस्म और दिमाग सभी का मोटा था। तालियाँ बजाते-बजाते अचानक ऊपर उछल पड़े। उनका उछलना था कि चटाख-चटाख की आवाज आयी और बेचारा पलंग दम तोड़ गया। यह बेजान सेवक दस साल साथ देकर इस फ़ानी जहान से विदा हो गया पर आख़िरी साँस से पहले अपने कातिलों को फ़र्श पर औंधे मुँह गिरा गया।

प्रोग्राम ख़तम होने पर हमने सभी लोगों को रुख़्सत किया और दस्तरख़्वान बिछाकर खाना खाने के लिए बैठ गये। अभी पहला लुकमा ही तोड़ा था कि बदबू की लपट ने मज़ा किरकिरा कर दिया। इधर-उधर नजर घुमायी पर कुछ समझ नहीं आया। हमने तो बैठक में ख़ुशबू फैलाने के लिए अगरबत्तियाँ-सी जलायी थीं पर ख़ुशबू की जगह बदबू कैसे फैल गयी, यह हमारी समझ से बाहर था। अचानक हमारी बेगम साहिबा की नज़र सोफे पर पड़ी। उन्होंने साड़ी के पल्लु से नाक ढक ली। हमने भी सोफ़े की ओर देखा और देखते ही जल-भुनकर रह गये। सोफ़े का उद्‌घाटन इस तरह होगा हमें क्या मालूम था। पड़ौसी द्वारा दी गयी मुबारिक़बाद नये सोफ़े पर साफ दिखायी दे रही थी। यह नाकाबिले बर-दाश्त हरकत नम्बरदार जगतार सिंह के दो वर्षीय साहबजादे की हो सकती थी जो बड़ी शान से सोफे पर बैठा था। शहजादे के ऊपरी जिस्म पर पोशाक के नाम पर एक मैला बनियान था लेकिन नीचे का हिस्सा नेचूरल ड्रेस में था। हमने अपने माथे पर जोर से हाथ मारा और आँगन से पानी की बाल्टी भरकर ले आये। बेगम साहिबा ने झाड़ू उठायी और सोफे को रगड़-रगड़कर साफ़ किया।

टेलीविजन का आना कितना शुभ था इसका सबूत पहले ही दिन मिल गया। दो सौ रुपये का पलंग तो टूटा ही साथ में हमारी बेगम साहिबा को जिन्होंने अभी तक अपने बच्चे का मुँह नहीं देखा था, नम्बरदार के लख़्ते-जिगर और नूरेचश्म के लिए मेहतरानी बनना पड़ा। उस दिन हम दोनों गुस्से की आग में इतने जले कि सारा नज़ला अपने पेटों (बेटों पर नहीं) पर गिरा कर ही रह गये।

टेलीविजन के आने से हमारी बेगम साहिबा का दर्जा जरूर कुछ बुलन्द हो गया था। पड़ौस के बच्चे उनकी इज्जत करने लगे थे। कोई उन्हें चाची कहता, कोई ताई और कोई दादी (यह दूसरी बात है कि वे अभी तक माँ नहीं बनी)। गाँव की बूढ़ी औरतें बेगम साहिबा को बायस्कोप वाली बीबी और बारह मन की धोबिन कहने लगी थी।

हर इतवार को फिल्म आती है, इस बात को गाँव के काफ़ी लोग जानते थे। टेलीविजन के उद्घाटन समारोह में जो बदमजगी पेश आयी और हमारा जो नुक्सान हुआ था उसे मद्देनजर रखते हुए हमने यह फ़ैसला कर लिया कि टेलीविजन हम दोनों ही देखेंगे और बाद में हम दोनों के जो दो होंगे—वे देखेंगे। टेलीविजन गाँव भर के लिए नहीं है। बेगम साहिबा ने कुछ ही दिन में हम पर जोर देकर इस फ़ैसले में मामूली-सी तरमीम करवा ली। तरमीम यह हुई कि अपने पुराने फ़ैसले को वाई पार्टिस इम्पलीमेंट करेंगे वरना लोग हमें मगरूर कहने लग जायेंगे। इतवार को फिल्म शुरू होने से पहले बेगम साहिबा की सलाह के मुताबिक हमने बैठक का सारा फर्नीचर और कालीन निकालकर दूसरे कमरे में डाल दिया। ऐसा न करते तो कई बार बाल्टी और झाड़ू उठानी पड़ती। फ़िल्म खतम होने पर फिर बैठक को पहले वाला लिबास पहना दिया। हम दोनों ने कमर कसी और साथ वाले कमरे से सोफ़ा उठाकर बैठक में लाने लगे। बीच के दरवाजे में से निकलते हुए बेगम साहिबा की साड़ी का पल्लु दरवाजे की कील में उलझ गया। वे धड़ाम से गिर पड़ी और सिर चौखट से जा टकराया। हमने सोफ़ा वहीं पटक उन्हें उठाया तो उनके माथे पर खून बह रहा था। यह देखकर हमारा खून खौल उठा लेकिन हम खून के घूंट पीकर रह गये। खून तो कुछ देर के बाद बन्द हो गया पर गुस्से की जो धार दिल में बहने लगी थी वह बन्द न हुई। इन सारी मुसीबतों की जड़ टेलीविजन ही था।

अगले दिन शाम को हमने जान-बूझकर टेलीविजन नहीं चलाया। गली-पड़ौस के लोग, जिनमें ज्यादा तादाद बच्चों की थी, हमारे घर में घुसते और इधर-उधर झाँककर नउम्मीद होकर बाहर निकल जाते। बच्चों की एक टोली ने निहायत अदब के साथ कहा—"चाची टेलीविजन चला दो न।" चाची (हमारी नहीं) तो चुप रही पर हमने बच्चों को यह कहकर टाल दिया कि हमारे सिर में सख्त दर्द है इसलिए आज टेलीविजन नहीं चलायेंगे। चन्द लम्हों के बाद गाँव के एक बुजुर्ग बायस्कोप देखने की ग़र्ज से हमारे घर में तशरीफ़ लाये। हमने उनका पुरजोश स्वागत किया। जब उन्होंने अपने आने का मकसद जाहिरा तौर पर बताया तो हमने टेलीविजन में अचानक कुछ खराबी हो जाने की वजह से उनसे मुआफ़ी माँग ली।

अगले दिन हमने दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द करके टेलीविज़न लगा लिया। हम और बेगम साहिबा बड़े इत्मीनान से प्रोग्राम का लुत्फ़ लेने लगे। न

नाने बच्चो को कम खबर पहुंच गयी चन्द लम्हों मे ही दरवाजे पर थपथपाहट शुरू हो गयी। मजबूर होकर हमने दरवाजा खोल दिया। क्षण भर मे पन्द्रह-बीस बच्चे हमें धकेलते हुए बैठक मे आ घुसे। हम हक्के-बक्के रह गये। हमने बच्चों को सोफे पर बैठने से मना किया। इस बात पर कुछ कहा-सुनी हो गयी। कहा-सुनी मे बात तू-तू—मैं-मैं तक जा पहुँची। तैश में आकर हमने एक लडके को थप्पड मार दिया। वह मेज पर जा गिरा। मेज पर रखा फूलदान नीचे जा गिरा और गिरते ही कई टुकड़ों में बिखर गया। यह फूलदान हमें बहुत ही अच्छा लगता था। अच्छा क्यों न लगता, हमारी साली साहिबा ने हमें पिछले जन्म-दिन पर भेंट किया था। फूलदान को टूटे हुए देखकर हमारा वही हाल हुआ "इक दिल के टुकडे हजार हुए कोई यहाँ गिरा कोई वहाँ गिरा।" फूलदान की यह हालत हमारी बेगम साहिबा से भी सहन न हुई। उन्होंने चण्डी का रूप धारण कर लिया। उनकी दोनों आँखों मे अंगार बरसने लगे। उन्होंने बच्चों को धक्के मार-मारकर बाहर निकाल दिया। इधर हम बच्चों की (अपने नहीं) वजह से परेशान थे और उधर बेगम साहिबा का पारा सातवें आसमान पर जा पहुँचा था। हमें बेगम साहिबा की उस जिद्द पर गुस्सा आ गया जिसकी वजह से मजबूर होकर हमें टेलीविजन लाना पड़ा था। अचानक हमारे मुँह से निकल पडा—"और बढाओ घर की रौनक़! यही हाल रहा तो चन्द दिनों में एक भी दरवाज़ा और खिडकी नहीं बचेगी।"

उस दिन के बाद हमने यह फैसला किया कि टेलीविजन सिर्फ़ इतवार को ही लगाया करेंगे। रोज-रोज टेलीविजन चलाना खतरे से खाली नहीं। हमने तीन-चार दिन टेलीविजन नहीं चलाया। इतवार की शाम गली के बच्चों ने हमारे घर के बाहर चक्कर लगाने शुरू कर दिये। हमने दरवाजे बन्द किये हुए थे। फिल्म शुरू होने से पहले हमारे दफ्तर के कुछ साथी बीवी-बच्चों समेत तशरीफ़ ले आये। हमने दरवाजा खोलकर सभी को बैठक में बिठा दिया और दरवाज़ा बन्द कर लिया। कुछ ही देर में 'दरवाज़ा खोलो—दरवाजा' का शोर सुनाई दिया। हमने गुस्से में आकर दरवाजा खोला और बाहर खडे बच्चों में से एक को पकड कर दो-चार थप्पड़ मार दिये। हम दरवाजा बन्द करके फिर मेहमानों के साथ आ बैठे। कुछ ही लम्हों में बाहर फिर शोर हुआ। बेगम साहिबा के कहने पर हमने दरवाजा खोल दिया और बच्चों को बाहर खड़े होकर ही टेलीविज़न देखने की ताकीद कर दी। हम दरवाजा खोलकर अन्दर आ बैठे। हम अपने मेहमानों के साथ फिल्म के एक गीत का आस्वादन कर रहे थे कि बाहर से एक मोटा सारा पत्थर आकर टेलीविजन की स्क्रीन पर लगा। जोर के धमाके के साथ स्क्रीन टूट गया और टेलीविजन का छाया प्रकाश गुल हो गया। कुछ देर के बाद मेहमान चले गये। हमने कई महीनों तक टेलीविज़न ठीक न कराने की प्रतिज्ञा की और भूखे पेट ही सो गये।

प्रतीक्षा में डार्लिंग की

जयनाथ नलिन

आदरणीया रमोइन जी ऐसी अजीब और मौलिक महिला है जो क्या मजाल कि खाना बनाने के बाद थकान मिटाने, पसीना पोंछने, हमसे बतियाने या जम्हाई-अगड़ाई लेने के बहाने पल-दो-पल भी ठहर जाये। काम समेटा तो ऐसी टुनकी चाल दिखाती आंखों से ओझल जैसे खूँटे से खुली बेलगाम बछेरी। हमारी भोजन मंजिकाजी भाग चुकी थी, वरना उन्हीं के साथ होमसाइन्स पर विचार-विनिमय होता और दोपहर के सूने सन्नाटे से बचा जाता। डार्लिंग श्रीमती जी की प्रतीक्षा करते-करते इतना बोर न होता।

मेरी श्रीमती जी अक्सर डेढ़ बजे कर तशरीफ ले आती है। आज क्या हो गया ? दो बज गये—सवा-दो-ढाई तक की नौबत आ गयी। नौकरानी के जाने और मैडम के आने के अन्तराल को—अकेलेपन की उकताहट को—मैं कभी पास नही फटकने देता। बिस्तर सम्भालता, उसे तान कर बिछाता, प्यार से नरम-नरम हथेली फेरकर चादर की सलवटें निकालता, सिरहाने को ठिकाने-करीने से लगाता। यह समय व्यस्तता, भावुकता, रसतल्लीनता, मुग्धता, ध्यान मुद्रा में ऐसा करता कि अकेलेपन का भान ही न होता। अनेक बार गौरा-पार्वती से मनाता कि जब मै डार्लिंग के मुस्ताने, थकान उतारने के लिए बिस्तर चिकनाता होऊँ तो मेरी स्वीटहार्ट, डार्लिंग, मेरे सपनों की रानी, मेरी कल्पनाओं की पिटारी यानी मेरी श्रीमती ऐन मौके पर अपने अरुणावरण सुकुमार-सरोजचरण-सुशोभित सैण्डल की टिपटिप करती कक्ष में प्रवेश करें। पर्स और पुस्तकें जुड़वां पलंग पर लापरवाही से पटक दें और पलंग पर फैल जायें। मुझे पूरी निष्ठा से पत्नीव्रत धर्म-पालन में फुर्ती से तत्पर देखकर लट-लट ही थोड़ा-सा ॒ द

कई बार छत की मुंडेर से मुंह निकालकर दूर चौराहे तक नजर दौड़ायी लेकिन किसी रिक्शे में उनकी साड़ी की किनारी लहराती नजर नहीं आयी। फिर कमरे में जाकर वही कोर्स दोहराया। एकाग्र चित्त से व्यस्त था कि किसी मानस जाति के ऊपर चढ़ने की हल्की-हल्की आवाज आयी। बड़ा खुश। ऐन वक्त पर पधारीं। काम में लगा-लगा ही बोला—"आइये रानी! पधारिये डार्लिंग!" और नेहरु तक सैण्डिल आये तो मैं स्वागतार्थ झपटा तो सामने देखा बर्तनवाली—"भैन जी आज बढ़िया स्टील की प्लेटें—टैरीकॉट की पतलूनें, बुशर्ट, लुंगी... !" सुनते ही बड़ा झुंझलाया।

बार-बार कमरे से बाहर आना, मुंडेर से गर्दन निकाल सड़क पर आँख दौड़ाना। चश्मा साफ करके हरेक रिक्शे की सवारी को पहचानने की कोशिश करना। विश्वास जमाता कि यह रिक्शा श्रीमती जी को लादे हुए अवश्य ला रहा है। जब रिक्शा सामने से निकल जाता तो रिक्शे वाले पर झल्लाता।

लू की चपेटों से हुए लाल-लाल पिले-पिले गाल, तपती धूप में जलती खोपड़ी, पसीने से तर माथा, गर्दन इत्यादि लिये फिर कमरे में लौट आया।

पंखे के नीचे बैठ, फ्रिज से पानी निकाल दो-चार घूँट पीये। फिर अटकल लगाने लगा—चौराहे से जरा पहले वह छोले-भटूरे की रेढ़ी है न—वह मर्दूद रेढ़ी वाला भाई न जाने कौन-सा मसाला डालता है छोलों में? किसी भी चाट की शौकीन, सुरुचि सम्पन्न महिला के लिए असम्भव है कि वह छोलों की मदरीली गन्ध से खिंची न चली जाये। मैडम भी कहीं वहीं न अपनी साथिनों-सहेलियों के साथ ठिठक गयी हों। श्रीमती जी भी चटपटे चाट-पकौड़ों, छोले-भटूरों की खानदानी शौकीन है ही। लेकिन क्या वह फुटपाथ पर खड़ी होकर, रेढ़ी से छोले-भटूरे खाना पसन्द करेंगी? क्यों नहीं? जब कोई लेडी डॉक्टर, लैक्चरर, समाजोद्धारिका, क्लब की साथी मिल गयी होगी, तो एक कुलीन, सभ्य, शिक्षित, सखी-सहेली के साथ चाट-पकौड़े, छोले-भटूरे खाने में कैसी झिझक कैसा संकोच? लेकिन वह जानती है कि उनके देर से पहुँचने पर मैं कितना परेशान होता हूँ। खाना तो क्या, दाल-सब्जी, सलाद, फुलके आदि सूँघता तक नहीं।

हो सकता है, जब घर आने के लिए रिक्शे की तलाश में हों, किसी साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक यानी डांस-म्यूजिक-ड्रामे के प्रोग्राम का निमन्त्रण आ गया हो और रिक्शा घर की तरफ मुड़ने की बजाय सभा-भवन की ओर मुड़ गया हो। वहाँ भाषण या सभा नेतृत्व के लिए जा विराजी हों। कार्यक्रम किसी महिला-मण्डल, विदुषी संगम, नारी निकेतन की ओर से हो तो और भी विलम्ब हो सकता है। नारियों की सभा में प्रोग्राम शुरू होने से पहले परस्पर हार-हमेल नेकलेस-इयररिंग, टॉप्स-बैंगल्स के भाव-ताव, लेटेस्ट डिजाइन, शिल्प कला, खोट-मिलावट, स्वर्ण चोरी, कौशल और साड़ी-ब्लाउज़, सैण्डल आदि पर गोष्ठी जमती

है। खैर, कौन मना करता है ? इन संगोष्ठियों में सम्मिलित होना भी आवश्यक है सामाजिक स्टेटस भी तो बनाये रखना है। लेकिन किसी के द्वारा सूचना तो पहुँचा देती, जिससे मैं भूख से कुलबुलाती आँतों को बहला-फुसलाकर एकाध घण्टे धीरज धरने को राजी कर लेता।

जैसे मैं अव्वल नम्बर पत्नीव्रत यानी अँग्रेजी में हैनपैक्ड हस्बैण्ड हूँ, वैसे ही मेरी वे भी परम पतिव्रता हैं। मैं फलों और मिठाइयों का नामी शौकीन हूँ। इनको हजम करने में उनका हाजमा मुझ से भी ज्यादा प्रशंसनीय है। क्या मालूम फलों, मिठाइयों की किसी थोक दूकान पर रुक गयी हों। घेवर फिरनी, मोहन हलुआ, पिश्ता-बादाम की बर्फी, काजू कलाकन्द आदि का भाव-ताव करने लगी हों। भाव-ताव में टाइम का अन्दाज तो रहता नहीं। हो सकता है, फलों की दूकान पर और भी बुद्धिजीवी महिलाएँ आ जुटी हों।

खैर जो भी हो, मैंने निश्चय कर लिया कि एक मॉडल हस्बैण्ड, एक निष्काम बेमतलब पति की इसी में शान है कि वह तपती धूप में खड़ा रहे और अपने प्यार का प्रमाण दे। मैंने सीमेण्टी सकल्प कर लिया कि ज्यों ही उनकी सवारी आती नजर आये, जीने की दो-दो, तीन-तीन पौडियाँ लाँघता हुआ बिजली की रफ्तार से नीचे जाऊँ, उनके रिक्शे से उतरने से पहले ही दरवाजा खोल, छलाँग लगा सविनय उनके सामने उपस्थित। तुरन्त उनके हाथ से झपट्टा मारकर पर्स, पुस्तके, फल, बिस्कुट, कास्मेटिक्स छीन लूँ। वह भौंवे ऊँची कर मुस्कराते हुए 'नहीं नहीं' करती रह जाये। उनकी खुली गोरी-गोरी गदरी बाँहे पकडकर धीरे से रिक्शे से नीचे उतारूँ! और मेरी वे 'हिश' कहकर लज्जाती-मुस्कुराती साड़ी के पल्लू से मुँह ढाँप ले।

कई जाने-पहचाने रिक्शे वाले भी सामने से निकल गये। उन पर भी बड़ा क्रोध आया—मक्कार निकम्मे यह न हुआ कि दो चार मिनट कॉलिज के गेट पर खड़े हो जाएँ। किसी चपरासी-पहरेदार से पूछ लें या मैडम को बुला लें। इन्हीं की रिक्शा में तो आती-जाती हैं।

कभी-कभी डार्लिंग पर भी झुँझलाता। यह नहीं सोचा कि बेचारा निरीह पति परमात्मा भूख से बेहाल हुआ जा रहा है। मेरे बिना वह पानी तक नहीं सटकता। उसके प्यार और भक्ति भाव का यह तिरस्कार। कहीं गपशप में बैठ गयी होंगी। कविता क्या करने लगी, घरबार की परवाह भी छोड़ कहीं सहेलियों को कविताएँ सुनाने में मस्त हो रही होंगी। यह भी क्या पागलपन। कई बार जी में आया—ऐसी की तैसी ऐसे पत्नीव्रत की। भूख के मारे मेरी तो आँतें कछुए की तरह सिकुड़कर पेट के कोने में घुस जाये और वह कहीं बैठकर स्वर अलापे, हाहा-हीहीं करें। क्यों न भाई के हाथ के ताजे-ताजे गरमागरम फूले-फूले फुलके मरोड़

कर फ्रिज में से निकालकर लस्पी के दो-चार गिलास डकार जाऊँ। चैन से चादर तान पलंग पर आराम करूँ। जब मर्जी हो आयें, अपने को क्या ? लेकिन पल भर बाद खोपड़ी में ज्ञान की लौ जग उठी। छी: छी: यह तुच्छ विचार।

जब तक मैडम डार्लिंग नहीं आ जाती, मन को क्षणभर भी चैन नहीं। एक-आध मिनट खोपड़ी ठण्डी करके फिर मुँडेर के पास आकर सिर आँखें निकाल चौराहे तक नज़र दौड़ायी। एक सजी-धजी रमणी चली आ रही है। वही मस्त झूमती चाल, हाथ में झूलता पर्स, हवा से खेलतीं कुन्तलों की कुण्डलियाँ। पक्की धारणा बनी कि यह तो एकदम मेरी डार्लिंग हैं। क्या मजाल, जो कोई और हो। मन आनन्द-हिलोरों में डूबने-उतरने लगा। सीढियाँ लाँघता हुआ नीचे पहुँचा और जाते-जाते तीस सैकिण्ड में ही प्यार भरे डायलॉग सोच लिये—"इत्ती देर। माई डार्लिंग स्वीट हार्ट, ब्यूटी क्वीन। हाय आज पैदल ? इन सुकुमार गुलाबी सरोज-पगों से... ।" लेकिन झपटकर किवाड़ जो खोले तो चेहरा फक ! बोलती बन्द ! कलेजा धक् ! यह तो सरासर सोलहों आने सैण्ट-परसैण्ट पर नारी ! महामुटल्लो, नयी ब्याही, भैंस जैसी चाल, पन्द्रह किलो का हरियाणवी घाघरा, थुल-थुल काया, हाथ में कई तह किया हुआ बदरंगी थैला।

हे करुणानिधान, भक्तों के बड़े भैया भगवान्, मेरी बुद्धि पर तूने कौन-सा मोटा माया-पट डाल दिया था कि मैं परायी बीरवानी को अपनी डार्लिंग मान बैठा।

परपत्नी को अपनी सगी पत्नी समझ लेने की अपराध-भावना से मैं इतना ग्लानि-गलित हुआ कि वापस लौट आया। ऐसा न हो कि फिर मिलती-जुलती चाल-ढाल आया-कपड़े के कारण किसी परस्त्री को अपनी समझ लेने का अपराध कर बैठूँ। आकर पलंग पर औंधा लेट गया। उनके अभी तक न आने, अपनी प्रेम-प्रदर्शन-कामना के कुचल जाने आदि की बातें सोचते-सोचते आँख लग गयी। और हड़बड़ाकर तब उठा, जब माई डार्लिंग, स्वीट हार्ट पसीना टपकाती, कन्धे पर धरी रंग-बिरंगी छतरी घुमाती, थकी-थकी आवाज़ में रोष प्रकट कर रही थी—"क्या बैल बैचकर लम्बी ताने खर्राटे भर रहे हो—यह तो न हुआ कि मेरे आने से पहले मेज़ पर खाना लगा दें, सलादादि तैयार रखें।"

काश, तुम समझ पाती कि मैंने कितनी आकुलता, तपस्या, भूख-प्यास सहकर तुम्हारी भावभीनी प्रतीक्षा की है डार्लिंग।

* * *

बुरे फँसे श्रीमती जी को वचन देकर

डा० हरिश्चन्द्र वर्मा

जमाने के साथ वचनों की तासीर भी बदल रही है। उनके लेने-देने के रंग-ढंग में भी ज़मीन-आसमान का फ़र्क आ गया। पुराने ज़माने में दिया हुआ वचन पत्थर की लकीर हुआ करता था, आजकल का दिया हुआ वचन पानी की लकीर से ज़्यादा टिकाऊ नहीं होता। राजा दशरथ ने भावुकता के कमज़ोर क्षणों में दो वचन क्या दे दिये थे कि बेचारे को लेने के देने पड़ गये। जब तक इस लोक से उस लोक में ट्रान्सफर न करा लिया, तब तक पिण्ड न छूटा। आजकल ज़माने के तेवर बदल गये हैं। लोगों को दिये हुए वचन वापस लेने में कोई परेशानी नहीं। वे दिन में दस बार वचन देते है तो ग्यारह बार वापस लेते हैं। ऐसा करने में उनकी जीभ में न तो मोच आती है न दराड़ पड़ती है। वचन की तो बात ही क्या, लोग पूरे-के-पूरे बयान देकर सफ़ाई से मुकर जाते हैं। लेकिन लोगों के जमघट में एक अपने राम भी है जो आज के फ़िसलन-भरे ज़माने में भी उसी पुरानी रघुवंशी लीक पर, अंगद के पैर टिकाते हुए, पवनपुत्र की गति से बढ़े चले जा रहे हैं।

बात यह है कि अपने राम बचपन से ही भावुक प्रकृति के रहे है। यों भावुक होना कोई बुरी बात नहीं। भावुकों की भावनाओं की रंग-बिरंगी बल्लियों के ऊपर ही यह दुनिया का चटकीला शीशमहल सीना ताने खड़ा है। विश्व के अन्य महान् भावुकों की भाँति ही अपने राम भी चापलूसी की चपेट में जल्दी ही आ जाते हैं। यही वह नाज़ुक घड़ी होती है जब किसी के अनुरोध के तनिक से ताप से ही हमारा मोम जैसा मन पिलपिला-सा होकर, आँखें मूँदकर, धड़ाधड़ वचन-पर-वचन दिये चला जाता है। फिर यह अनुरोध अपने ही किसी आदमी की ओर से हो तो कलेजे के बैरोमीटर की सूई आवेश में आकर एक पूरी छलाँग ही लगा देती है।

हमारा श्रीमती जी पुराने माडल की है। उन दिनों ये माडल अधिक चलता था। हम दोनों की तकदीरों का मासूम गठबन्धन बचपन में उसी समय हो गया था जब उनकी जीभ से तुतलाहट के संस्कार अभी विदा नहीं हो पाये थे और हमारी सरस्वती अभी बारहखड़ी सीख रही थी। पावन परिणय के रेशमी बन्धन में बँधने के कारण श्रीमती जी सौभाग्यशाली रहीं और किसी मगजचाटू पाठशाला का मुँह न देख सकीं। हमारे लाख झक मारने पर भी वे निरक्षरता की लक्ष्मण-रेखा को लाँघने में बाल-बाल बची रहीं। मेरी पढ़ायी-लिखायी की अँगूर-लता उनकी अनपढ़ता के वट-वृक्ष की सघन शाखाओं के भरोसे पर ही फलती-फूलती रही। इसीलिए मुझे एक लद्दू घोड़े की भाँति पढ़ायी की दोहरी खेप ढोनी पड़ी। डबल एम०ए० और डबल पी-एच०डी० के पाटों में पिसता हुआ अन्त में डी० लिट्० के कुतुबमीनार पर चढ़ा।

लेकिन देवी जी की अनपढ़ता कोई घुटनाटेक दुर्बलता नहीं है, वरन् वह भीम की गदा है जिसके घूमते ही पढ़े-लिखों के तर्कों के तीर मुँह की खाकर, आप-से-आप तरकश में लौट आते हैं। देवी जी की अनपढ़ आँखें हमारे चेहरे के चैप्टर को बाँचने में कभी भी चूक नहीं करतीं। उस दिन हम ताजा-ताजा किसी कवि-सम्मेलन से लौटे थे। हमारे चेहरे की छोटी-बड़ी, खड़ी-पड़ी रेखाओं में लिखी नयी कविता की पंक्तियाँ हमारे मन के उल्लास की धूप से निखरकर नया अर्थ दे रही थीं। देवी जी को यह समझते देर नहीं लगी कि इस बार कवि सम्मेलन के मोर्चे पर हमारी कविता हूट होते-होते रह गयी है। इसी खुशी में चेहरे पर अंकित नयी कविता ने ग़जल का रूप ले लिया था। देवी जी ने आँखों में चार बीघा चाँदनी भरकर हमारे मुख-मण्डल की ओर निहारा और वाणी में एक क्विंटल शहद घोलती हुई बोलीं—"देखो जी, कवियों की मण्डली में, अब तो आपकी कविता ऐसे ही जमने लगी है जैसे चीनी की कुँडी में पड़ौसी गेंदा सिंह की भैंस के दूध का दही।" ऐसा कहते-कहते उन्होंने अपने खुले केशों को ऐसी अदा के साथ झटका दिया कि वे डिस्को डान्स की विभिन्न मुद्राओं में बिखर गये।

देवी जी के शहदीले शब्दों से चन्दनिया खुशबू फूट रही थी। हमारे मन का मरियल टट्टू बाँसों उछल रहा था। तभी हमने अपने कोट की, गुफ़ा जैसी गहरी जेब से निकालकर, ढाई सौ रुपये के निखरे-निखरे नोट श्रीमती जी की मेंहदी रची हथेली पर टिका दिये। देवी जी की आँखों के खंजन-पक्षी हथेली पर फड़फड़ाते नोटों की भाँति फड़क उठे। वे पुतलियों से प्रसन्नता के गुब्बारे उड़ाती हुई, होंठों को लखमीचन्द की रागनियों के गाढ़े रस की चाशनी में भिगोकर, पंचम स्वर में बोलीं—"देखो जी, अगर नाक न मारो तो एक बात कहूँ ? अब तो आपकी सुर-सुती लच्छमी जी की आँखों में खूब टोकरा भर-भरकर धूल झोंकने लगी है, हमारी मानो तो अबकी गर्मियों की छुट्टियों में हरद्वार, ऋषिकेश, लछमनझूला

घूमने-फिरने का प्रोग्राम बनाओ।" हमारी गरदन का सिगनल आप-से-आप डाउन हो गया और श्रीमती जी की फ़रमाइश की ट्रेन सीटी बजाती हुई ठीक जंक्शन पर जाकर रुकी।

धीरे-धीरे समय गुजरता गया और अपनेराम की मुसीबत के बादल गहराते चले गये। जैसे केले के पत्ते में से पत्ता निकलता चलता है उसी तरह देवी जी की फ़रमाइश में से फरमाइश निकलती चली गयी। कभी कहती—"क्यों जी सुनते हो, क्या हरिद्वार लायक कोई साड़ी है मेरे पास? क्या इन पुरानी सड़ी हुई साड़ियों से ही गंगा जी को मुंह दिखाऊँगी? क्या गंगा मैया मेरा ढंग-डौल देख के अपना माथा न पीटेगी?" कभी कहती—"क्यों जी, इन कविताओं में ही माथा मारते रहोगे या कुछ मेरी भी सुनोगे? क्या आपने अपने कानों में रुई का पूरा-का पूरा ट्रक ही ठोक रखा है, जो किसी की सुनते ही नहीं। गर्मियाँ आने वाली हैं, और इधर देखो, न नाक में सोने की लौंग और न कानों में बालियाँ। क्या नकटे-बूचे की तरह लछमनझूला में झूलना अच्छा लगेगा?" देवी जी के मन में न जाने कहाँ से यह भ्रम कुण्डली मारकर बैठा हुआ था कि 'लक्ष्मण झूला' कोई लम्बा-चौड़ा झूला है जिसमें बैठकर औरतें गीतों की शरबतिया गूँज के बीच लम्बे-लम्बे पेंग बढ़ाकर झूलती हैं। देवी जी की माँगें अपने पैर फैलाती गयीं और इधर हमारी सहमी-सहमी अर्थ-व्यवस्था की चादर दिन-प्रतिदिन सिकुड़ने लगी। उधर जब पप्पू, डब्बू और गुड्डी के कानों में भनक पड़ी तो वे भी चौकन्ने हो गये। तीनों ने लम्बे-लम्बे माँग-पत्र थमा दिये। रोज घेराव होने लगा। हमारी अर्थ-व्यवस्था के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। रंगत का खोमचा भी काफ़ी बिगड़ चुका था। हमारी कविता की हालत तो हमसे भी कहीं ज्यादा खस्ता थी। वह हमारी खोपड़ी की काल-कोठरी में अनशन-पाटी लिये पड़ी थी और अपनी ही मौत का मर्सिया पढ़ रही थी। हमारी कविता का कारोबार कुछ ही दिन में चौपट हो गया। कुछ दिन तक हमारे दिमाग़ के कबाड़ी बाजार में पूर्ण हड़ताल रही।

हमारी यात्रा के अनुभव के सीने में भी बार-बार पछतावे की पिनें चुभती रहीं। उसी दिन शाम को डब्बू जलेबियों की दुकान पर खड़ा रह गया। बड़ी मुश्किल से हर की पौड़ियों पर मिला। चण्डी के मन्दिर की चढ़ायी चढ़ते-चढ़ते, पत्थर से पैर फिसलने पर हमारे दोनों घुटनों में चोटें आयीं। हमारा हृदय फट-फट के इंजिन की भाँति भभक रहा था। वहाँ से लौटे तो नौका-विहार का प्रोग्राम बना। लोग रुपये-पैसे, आभूषण गंगा की नीलधारा में फेंक रहे थे। देवी जी ने अपनी अँगुली से सोने अँगूठी उतारकर गंगा मैया की भेंट कर दी। हमारे हृदय में दर्द की एक लहर-सी उठी और देवी जी की श्रद्धा की शिला के नीचे जाकर दम तोड़ गयी। नौका में से उतरे तो लगा जैसा माया-मोह के भव-सागर से पार उतर गये हैं। देवी जी का चेहरा भक्ति के आवेश के गुलाल में रंगकर सिन्दूरी आभा में नहा रहा था। लौटती बार रह-रहकर यही विचार हमारे मन को मसोस था—'बुरे फँसे श्रीमती को वचन देकर।'

दर्पण

राजेन्द्र निमेश

दर्पण यानी आईना भी एक अजीब वस्तु है। काँच का एक टुकड़ा मात्र हमारी जिन्दगी का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है. पता नहीं इसका चलन कब और कैसे हुआ ? लेकिन इसके अस्तित्व में आने से पूर्व लोग विशेषकर युवतियाँ अपनी मुख-छवि का निहार कैसे करती रही होंगी, यह भी हमारी कल्पना का एक विषय हो सकता है। शायद ठहरे हुए स्वच्छ जल मे अपनी छवि को निहारा जाता होगा और हार-सिंगार किया जाता होगा। ताल-तलैइयों के किनारे जल भरने के बहाने गयी युवतियाँ जल में अपने-आपको देखकर अपने सौन्दर्य का बोध करती होंगी या फिर उनकी छवि का बखान करने का भार उनके पति अथवा रसिक मिजाज प्रेमी पर पडता होगा। आदमी तो सदा ही सौन्दर्य का पुजारी रहा है और स्त्री सदा ही अपने सौन्दर्य प्रशंसा की भूखी।

जब से दर्पण का चलन हुआ है, स्वयं को देखने या निहारने का कार्य सुलभ हो गया है। स्त्रियों का तो इस दर्पण से विशेष लगाव होता है। घण्टों इसके आगे बैठी हार-सिंगार करती रहती है या अपने-आपको विशेष कोणों से देखती रहती हैं। कुछ का तो यहाँ तक मत है कि स्त्रियों की आयु का दो-तिहाई भाग इसी दर्पण के सामने व्यतीत होता है। वैसे इसमें कुछ अतिशयोक्ति हो सकती है। दर्पण के सम्मुख बैठी पत्नी या प्रेयसी कभी-कभी इस कदर इसमे डूब जाती है कि उधर बेचारा पति हो या प्रेमी, इन्तजार में सिर नोच लेता है। इधर प्यार का मौसम अँगड़ाइयाँ ले रहा होता है और उधर दर्पण है कि 'छूटे, नाहीं छूटे !' कई बार तो ऐसा भी होता है कि आपने शाम छ: बजे वाली गाड़ी पकड़नी है अथवा फिल्म-शो देखने जाना है मगर घड़ी की सुई साढ़े छ पर पर ही बजा देती है क्योंकि

श्रीमती जी को दर्पण रूपी कम्बख्त छोड़ने का नाम नहीं लेता। इसके बाद या तो आपको कार्यक्रम रद्द करना पड़ता है अथवा उसके बाद की ट्रेन अथवा फ़िल्म-शो का इन्तजार करना पड़ता है। युवतियों के लिए इसका महत्त्व इस बात से आंका जा सकता है कि अगर वह कोई पर्स आदि साथ में लिये हुए है तो उसमें लिपस्टिक के अतिरिक्त एक अदद दर्पण अवश्य होगा।

केवल महिलाएँ ही नहीं, पुरुष-वर्ग भी इसके चंगुल में बुरी तरह से फँसा हुआ है। कुछ बाँकुरे तो घण्टों इसे घूरते रहते हैं, चाहे उनका चौखटा 'ऊँट रे ऊँट ! तेरी कौन सी कल सीधी' कहावत को चरितार्थ ही क्यों न कर रहा हो। अपने मित्र बाँकेलाल को सदा ही इस दर्पण से शिकायत रही है। उनका कहना है कि जब भी वह आईने के सामने होते हैं तो उन्हें अपनी एक आँख कुछ टेढ़ी नज़र आती है और वह नया आईना खरीदने के लिए बाजार दौड़ पड़ते हैं। लेकिन नया आईना भी उन्हें धोखा दे जाता है। यह विचित्र विडम्बना ही तो है !

वह क्षण तो अति कष्टदायक होते हैं जब इसमें अपनी मुख-छवि को निहारते हुए आपको अपनी मूँछ में या सिर में कोई सफेद बाल अपनी झलक दिखला जाता है। बुढ़ापे के आगमन का यह पूर्व-सन्देश सिर से पैर तक एक सिहरन पैदा कर जाता है, क्योंकि हर कोई युवा रहना चाहता है। स्त्रियों के लिए तो सिर में सफेद बाल का दीख जाना अथवा मुख-मुद्रा का ढीलापन कहर ढाने के समान होता है। फलस्वरूप सिर पर 'हेयर डाई' का का प्रयोग शुरू हो जाता है और मुख पर पाउडर की एक और परत बढ़ा दी जाती है।

कभी-कभी इस आईने के कारण बड़ी रोचक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जैसे अपने एक अन्य मित्र महोदय प्रायः शिकायत करते रहते हैं कि सुबह-सवेरे उन्होंने न जाने किस मनहूस की शक्ल देखी थी कि दिन-भर असफलताओं का मुख देखना पड़ा। लेकिन मेरे में इतनी हिम्मत नहीं कि मैं उन्हें यह जता सकूँ कि श्रीमन् आप सुबह बिस्तर छोड़ने के उपरान्त सबसे पहले दर्पण के सामने जाकर अपने श्रीमुख का अवलोकन करते हैं। आख़िर दोस्ती का कुछ तो हक़ अदा करना ही है।

दर्पण के अस्तित्व का आभास काँच के टुकड़े मात्र तक ही निहित नहीं है। इसका विस्तार अपार है, इसकी सीमा अनन्त है। हमारा यह मन भी दर्पण कहलाता है और इसकी कोई सीमा नहीं। इसमें सच-झूठ सब कुछ अंकित हो जाता है। लेकिन इसकी छवि को हम अपनी सुविधानुसार ढाल लेते हैं। हर कोई अपने अनुरूप दर्पण लिये घूम रहा है। किसी के दिल-रूपी आईने में 'तस्वीरे-यार' बसी है और कोई टूटे पंख के पक्षी की तरह मंज़िल पाने में असफल होने पर छटपटाता रहा है। कोई चन्द तुकान्त अथवा अतुकान्त पंक्तियों को लेखनी-बद्ध करने पर अपने अन्दर के दर्पण में कुछ इस रूप में देखता है कि उसे अपने अन्दर का लेखक

बहुत विभिन्न रूप मे निखता है लेकिन जब किसी पत्रिका मे प्रकाशनार्थ प्रेषित की गयी रचना सम्पादक के अभिवादन एव खद सहित लौट आती है तो उस बेचारे का दिल-रूपी आईना परक जाना है। सम्पादक की दृष्टि का दर्पण तो उसे अपने ही रूप मे देखता है। इसी प्रकार आलोचक-गण भी हर वस्तु को अपने दृष्टिकोण के आईने मे देखते है और कभी-की आलोचना मे वास्तविक बात ऐसे गायब हो जाती है, जैसे गधे के सिर से सींग। ऐसे ही कुछ ऊँचे नेत्र-दर्पण मे देखने वाले देश को खुशहाल ही पाते है। उन्हे कही गरीबी की छाया अथवा अभाव नजर नही आयेगा। महानगरों में बने बड़े-बडे भवनों के साये मे पड़ी टूटी-फूटी झोंपडियाँ भला उनकी दृष्टि को छू सकती है ? सावन के अन्धे को हरा-ही-हरा दिखेगा ही ! यह विचित्र विडम्बना है कि सच्चाई के दर्पण मे देखते हुए भी कभी-कभी आँखें मूँदे रखने का नाटक होता रहता है। शायद इसी कारण 'कतील' साहब ने फरमाया है—

अब आईनों को नही है एतबार चेहरे पर।

वैसे ऐतबार किसी को किसी पर नही रहा, क्योकि हर वस्तु का व्यापार होने लगा है। कही दूल्हा बिकता है तो कहीं शिक्षा। कहीं प्यार-मुहब्बत को सिक्कों की झनकार के आगे नीलाम कर दिया जाता है और कही ईमान की ख़रीद-फरोख़्त होती है। जो चेहरा हमे बाहर जैसा दिखायी देता है, वह अन्दर से कुछ और ही निकलता है। असली और नकली मे भेद करना टेढ़ी खीर के समान हो गया है। लेकिन कुछ अनाड़ी ऐसे भी है जो अपनी ही धुन में चले जा रहे है। कुछ गंजो की नगरी में कँघियाँ बेचने निकल पड़ते है और जब उनसे उनके कारोबार के बारे में पूछा जाता है तो किसी शायर की ज़ुबान मे कहने लगते है—

क्या हाल पूछते हो मेरे कारोबार का
आईने बेचता हूँ अंधों के शहर में।

वैसे अपने यहाँ काला धन्धा करने वालो की भी कमी नही। आप कौन-सा कारोबार करते है, किसी को बताइयेगा मत।

* * *

सृष्टि का एक दयनीय जीव

अशोक भाटिया

इस लेख में मैं साहित्य से पीडित लोगो की बात उठाऊँगा। वैसे पहले भी एक-दो लेख इन पर लिख चुका हूँ, लेकिन उसके बाद फिर कुछ ऐसे लोग मिल गये, जिनके व्यवहार में व्यंग्य-सामग्री भरी हुई थी। तो यह लेख उन्ही पर लिखा जा रहा है। धन्य है ऐसे लोग, जो साहित्य के विकास में इतना योगदान दे रहे है।

साहित्य लोगों को दो तरह से पीडित कर सकता है और दोनों तरह के लोग मुझे बडे दयनीय लगते है। एक वे लोग होते है, जो इसे जबरदस्ती लिखते है या इस पर सवार होना चाहते हैं। दूसरे वे पीड़ित होते हैं, जो इसे सुनते हैं। मैं यहाँ सिर्फ ऐसा लिखने वालों की ही बात करूँगा, क्योंकि इनके कारण ही सुनने वाले दुखी है। मुझे याद है, एक बार कुछ लोगो को जेल हुई तो जेल में एक तरफ़ कुछ कवि कविता में अपनी पीड़ा गा रहे थे। जी हाँ, पीड़ा थी—जिसे वे क्रोध मे गा रहे थे। दूसरे कोने पर खडे बाकी लोग चीखने लगे—'हाय! मर गये।' कवियो ने पूछा—'क्या हुआ?' तो बोले—'हम कविता से पीड़ित है।'

ऐसे कवि और ऐसे लोग—दोनों आदर्श होते है। उधर कवि की देश के प्रति पीड़ा तभी जगी, जब वह जेल गया। देश पीड़ित था—तब वह सुखी था, इसलिए चुप रहा। अब जेल गया, तो पीड़ा भी जाग गयी। दरअसल वह चाहता था कि वह जेल जाये। इसका बड़ा लाभ होगा। वह सेवक बन जायेगा। बाहर आते ही सब उसे लेने आयेंगे जैसे दुल्हन को लिवाने के लिए आते हैं तब वह

मेरे पाँव   आजकल म भी साच रहा हू कि वडा हो जाने के लिए मैं रचना लिखना छोड़ दूँ और एक-दो बार जेल की हवा खा आऊँ। ऐसे लोगो की माग यदि सीधे ही मान ली जाये, तो बेचारे बड़े दुखी होते है। कुछ लोग यदि कहे—'हे सरकार ! गेहूँ की इतनी दर तय करो, नहीं तो हम आन्दोलन कर देंगे, जेल भर देंगे।' और सरकार उनकी बात सही मानकर दर तय कर दे, तो ये लोग बडे निराश होगे, क्योंकि जेल जाने का यानी देश-सेवक होने का एक सुनहरा मौका हाथ से निकल जायेगा।

और ऐसे लोग जब जेल जाते हैं तो कविता जरूर लिखते हे—याद की, प्रसाद की, प्याज की, औलाद की—सारी कविताएँ यहाँ लिखी जाती है। एक बार एक आदमी जेल से कोई कविता लिखे जाने से पूर्व ही छूटकर आ गया। उसके दोस्तो ने उसे बड़ी हिकारत से देखा—'धत्तेरे की, कैसे आदमी हो, जेल मे जाकर भी कवि न हुए तो फिर कब होगे। एक भी महाकाव्य नही लिखा ? हद है। तुम्हे नही पता कि जेल मे लिखी कविता चाहे गधे का 'ढेंचु' हो, किन्तु हाथो हाथों उठती है और आदमी साहित्यकार हो जाता है।' दोस्तों की यह बाते सुनकर वह आदमी बड़ा निराश हुआ। वह अब कवि हो जाने के लिए जेल हो आने का मौका तलाश रहा है। तो एक तो ऐसे लोग आदर्श हुए।

दूसरे, वे लोग भी आदर्श है, जो कविता या साहित्य की आवाज भी कानो मे पड़ जाना पाप समझते है। सोचते हैं कि देश की हालत बयान की जा रही है—बड़ा गलत किया जा रहा है। देश के बारे में कहा जा रहा है—हाय ! यह कैसा साहित्य है—देश के बारे ही कहा जा रहा है ! आह ! सारे देश के बारे मे ही कहा जा रहा है। हाय, मर गये, देश का यथार्थ चित्रण सुनना पडा। देश की खराब हालत कानों मे पड रही है। ओफ्फ़, तबीयत बिगड रही है। फट जायेगे कान, फट जायेगा दिल ! दिल कहेगा—हे भाई, तेरा जन्म क्या इसीलिए हुआ था कि बैठकर देश की सारी सच्चाई सुनने में लगा रह, मुझसे नही सही जाती ये सच्ची बातें। हाय !

तो ये लोग चाहे जिस माहौल में रहें—दरअसल इन्हें काम-वासना की बाते चाहिएँ। वाह, क्या दिव्यता है !... इन्हे चाहिए अध्यात्म की बात—वाह, क्या सुन्दर आध्यात्मिक फूल खिला है, कितनी पवित्र आत्मा है इस फूल की। ऐसे लोग भोग-लिप्साओ में पड़कर और अश्लील साहित्य पढकर आध्यात्मिक होने और पवित्र होने का प्रयास करते है। इन्हें कोई दुःख नही, कोई चिन्ता नही, क्योंकि ये 'आध्यात्मिकता के साथ' रहते है। प्रमाण है मेरे पास। एक कोई थे, जो लडकियों को छेड़ा करते थे, किन्तु पिता के प्रभाव से 'गायक' हो गये थे। लेकिन वह पुराना स्वभाव कभी सड़क पर मचल उठता। तब वे धार्मिक तरीके से छेडने लगे। लडकी देखकर कहते—'वाहिगुरु ! आज तो बड़े जँच रहे हो।'

मैं पहले कह चुका हूँ कि मुझे पहली तरह के पीड़ितों पर लिखना है। उनमें भी मैंने सिर्फ एक ही दयनीय जीव को चुना है। वह कटघरे में पेश है। इसे देखिए और सोचिए कि इसके साथ कैसा सलूक किया जाये।

कवियों की एक गोष्ठी हो रही थी। उसमें एक कवि पहली बार आया था—पतला, काला, लम्बे बालों वाला वह कवि बड़ा दुखी और भरा हुआ लगता था। वह खड़ा हुआ, चमकीले कुर्ते को नीचे खींचा, शाल को ठीक किया, पसीले चेहरे पर हाथ फेरा और फिर कनपटियों पर हाथ लगाकर देखा—वहाँ सेंट के दोनों फाहे सुरक्षित थे। सेंट से उसका विश्वास और बढ़ गया। शायद सेंट की शीशी ही छिड़क आता, तो वह महाकवि निराला हो सकता था। फिर भी, सेंट के दो फाहे कवि बनाने के लिए काफी थे। लोगों ने उसे देखा—कुर्ता बढ़िया चमकीला है, चेहरा रोबीला है, शरीर गठीला है—जरूर कोई अच्छा कवि होगा। वह कवि हाथ मलते हुए बोला—भाइयो और बहनो! माफ करना, मुझे कविता करने की आदत है। हाँ तो भाइयो, यह कितना अन्याय है कि हमारे देश में कवियों को अच्छी सुविधाएँ नहीं मिलतीं। सरकार को चाहिए कि सब कवियों को एक-एक कार दान में दे दे, ताकि वे कार में बैठकर झील के किनारे जा सकें और कविता लिख सकें। अब मुझे ही देखिए, मैंने यहाँ तक आने में कितना सफर किया। बीस-बीस पृष्ठ के तीन कविता-संग्रह निकलवा चुका हूँ। मुक्तिबोध के भी तीन कविता-संग्रह नहीं हैं। मैं उनसे भी बड़ा हूँ। किन्तु मुझे न कोई पुरस्कार मिला, न मेरी चर्चा हुई। हाँ, एक बार क्षणिका-प्रतियोगिता में मेरे चाचा के लड़के ने मुझे जरूर पुरस्कृत किया था। पर इतने से मेरी तसल्ली नहीं होती। मेरा अगर कोई भी रिश्तेदार साहित्य में नहीं है, इसलिए मुझे और पुरस्कार नहीं मिल सकते। परिश्रम के बल पर पुरस्कार लेने की आदत मुझे नहीं है। क्योंकि मेरे संस्कार ही ऐसे नहीं हैं और मैं संस्कारों का गुलाम हूँ। किन्तु ऐसी स्थिति में सरकार को मेरे लिए कुछ करना चाहिए, वरना देश का विकास कैसे होगा? कवि भी तब अच्छी कविता कैसे करेगा?

आप तो जानते ही हैं (और आपने किया भी होगा), कि प्रेम के बिना अच्छी कविता नहीं हो सकती। देश में प्रेम की बड़ी कमी हो गयी है। इस कमी को दूर क्यों नहीं किया जाता। प्रेम के इलाके में सूखा और अकाल पड़ रहा है। सरकार कैसे सह रही है? हाय, कोई दिल का दौरा भी नहीं किया किसी ने। .. और मैं हूँ कि अच्छी कविता लिखे जाने के लिए आज तक प्रेम की तलाश में हूँ। कम-से-कम इतना तो कर दो कि हम खुले-आम प्रेम कर सकें, ताकि कविता भी खुलकर लिखी जा सके। भाइयो, यह तब तक नहीं होगा, जब तक बुजुर्ग हमारा रास्ते रोकते रहेंगे। वे अभी भी घूरते हैं। ऐसे में देश कैसे विकास कर सकता है। उनका घूरना देश के विकास में एक बाधा है।

कुछ आवाज़ आयीं— पर आप तो कर चुके हैं !

'क्या ? विकास या प्रेम ? जहाँ तक विकास की बात है—बहुत किया है। तीन संग्रह आ चुके है। लोग प्रशंसा करते हैं, डरते भी हैं, जो एक बहुत बडी उपलब्धि है।'

'आप प्रेम कर चुके हैं।' एक आवाज़ आयी।

'ओह हाँ, एकाध प्रेम किया ज़रूर था, पर वह टैम्परेरी प्रेम था। खैर छोड़िए इसे। अब आइए साहित्य की तरफ़। आप ही देखिए, मैं सारा दिन कविता करता रहता हूँ और कुछ नही करता। कभी बीवी की बात नही सुनी, कभी बच्चों को नही देखा, नौकरी भी ईमानदारी से नही करता—सिर्फ़ कविता करने के लिए। हूँ न मै आदर्श कवि ! तब क्या मुझे सही नाम, सही स्थान नही मिलना चाहिए ? पर लोग कितने बेदर्द है ? हाय, सब अपना काम किये जा रहे है। मेरे नाम की किसी को चिन्ता नही हो रही। तीन-तीन कविता-सग्रह छपवा मारे—कुत्ते की दुम सदा टेढी, जब मै मरा और जूठन कविता। मैंने मुक्तक से लेकर तुक्तक, हुक्तक, कुक्तक, जुत्तक और गज़ल से लेकर हज़ल, कज़ल, फ़ज़ल, पज़ल सब लिखे है, ताकि नाम मिले। पर सरकार ने न मुझे कोई इनाम दिया, न किताब छपाने को कभी पैसा दिया। यह घोर अन्याय है, नागरिक अधिकारों पर हमला है। वो जो कविताओं की किताब निकली है रामपुर से, उसमे मुझे एक उस कवि से नीचे रखा गया, जो उम्र में मुझसे एक दिन, चार घण्टे, दो मिनट, पचपन सेकिण्ड छोटा है और मुझसे उसने सवा सात पृष्ठ कम लिखे है। यह मानहानि का केस है। मैं उस सम्पादक पर मुकदमा करूँगा। पहले वाली सारी प्रतियाँ जलवा दूँगा, क्योंकि उनमें मेरे छोटेपन के प्रमाण हैं। वे सब दोबारा छपेंगीं। आख़िर में उस कवि से ही नही, कीट्स की उम्र से भी दो साल बड़ा हूँ। इसलिए मैं महान् कवि कीट्स से भी 'दो फुट' बड़ा कवि हो गया हूँ। आप सब खड़े होकर मेरी चरण-रज अपने माथे पर लगायें और मेरे दुष्ट हाथों से आशीर्वाद प्राप्त करें—इसी में आपकी भलाई है।

हाँ, तो बात चल रही थी कि देश का विकास कैसे होगा। हमारे इर्द-गिर्द इतनी समस्याएँ भरी पड़ी है, जैसे कि बागों मे फूल भरे पड़े है। यह गलत बात है। हमे चाहिए कि समस्याओं को प्यार मे कहे कि आप प्लीज चली जायें। पराये घर में ज्यादा रहना ठीक नही। आप चाहें, तो यह भी न कहें। हम सिर्फ़ कविता लिखते रहें, तो भी अपने आप देश का विकास हो जायेगा। कविता लिखेंगे, तो वह छपेंगी। नही छपेगी तो हम खुद छपवा लेंगे—'इन्द्र नगर के स्थानीय कवि।' कविता छापेंगे, तो कुछ बिकेंगी, कुछ लोग पढ़ेंगे। कुछ जानकार हमारी प्रशंसा भी करेंगे। विकास करने का यही तरीका है। कवि का विकास देश का विकास है।

अत देश का विकास करना है तो हमारा विकास करो। हम भी अपना कर रहे हैं।

भाइयो ! लोग मेरे पास आकर कहते हैं—आपने अपनी छोटी-सी ज़िन्दगी में सैकड़ों शब्द लिख डाले। आपने इतना उपकार किया, पर आपको कुछ नहीं मिला। आपके 'स्वर्ण-स्वर्ण', 'रजत-रजत' लिखने से ही देश 'सोना-सोना' और 'चांदी-चांदी' बन गया है। काश, कि आप 'हीरा-हीरा' लिखते, तो देश फौरन हीरे का टुकड़ा हो जाता। लोग और भी बातें कहते हैं। वे कहते हैं—आपने लिखा कि स्वर्ग निर्माण करो। मैंने तब से ही दो सौ गज ज़मीन लेकर स्वर्ग बनाने का ठेका दे दिया है। चालीस दिन तक स्वर्ग बनकर तैयार हो जायेगा।'

मैं उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ, जब लोग रोज आकर मुझे ऐसी बातें कहा करेंगे। इसी में राष्ट्र का कल्याण है। राष्ट्र का ऐसा कल्याण जब तक नहीं हो जाता, तब तक मैं कविता लिखना नहीं छोड़ूँगा। अभी खड़े-खड़े एक कविता आयी है—देखिए—

धोबी धुलाई नहीं छोड़ेगा
रोगी दवाई नहीं छोड़ेगा
तभी तो कहता हूँ कि
कवि कविताई नहीं छोड़ेगा।

धन्यवाद !

* * *

हाथ का कमाल

सुरेन्द्रनाथ सक्सेना

हाथों का कमाल तो देखिए कि युवक द्वारा युवती का हाथ पकड़ते ही वह उसकी पत्नी स्वीकार कर ली जाती है और अखाड़े में पहलवानों द्वारा एक-दूसरे का हाथ पकड़ने पर कुश्ती छिड़ जाती है। समय, स्थान तथा परिस्थिति के परिवर्तित होने पर आपका किसी वस्तु या व्यक्ति को हाथ से पकड़ना अर्थ का अनर्थ कर सकता है। इसलिए सावधान! किसी को हाथ लगाने या पकड़ने से पहले चाहे वह पत्नी हो या चाय की पतीली भली प्रकार विचार कर लें कि वह गरम तो नहीं।

समाज में आपसी सम्बन्धों को मधुर बनाने के लिए मेरा सुझाव है कि जब कभी किसी का दिमाग़ गरम हो वह अपने गले में एक पट्टा डाल ले जिस पर लिखा हो—सावधान! अभी दिमाग़ गरम है। इस सुझाव का लाभ इसको क्रियान्वित करने पर अधिक अच्छी तरह पता चल सकता है।

हाथों की सफाई एक महत्त्वपूर्ण विषय है। हाथ साफ़ रखने से रोग नहीं होते। पत्नियाँ अपने हाथों की सफाई के लिए उम्र भर पतियों की जेबों का इस्तेमाल करती हैं। इससे वे स्वयं रोगों से बची रहती हैं और उनके पति सांसारिक भोगों से। बेचारे जेबकतरे अपने हाथों की सफाई ग्राहकों की मोटी-मोटी जेबों पर करते हैं। कभी-कभार पकड़े जाने पर उन्हें हथकड़ी पहनने का अवसर भी मिलता है ज[illegible] का बात को पति-पत्नी के मधुर [illegible] के बीच लाना ठीक [illegible]

जो किसी-न-किसी उपाय द्वारा पतियों की नकेल अपने हाथ में रखती है। जो ऐसा नहीं कर पाती उनका पति-रूपी पक्षी किसी सुन्दरी के प्रेमजाल में फँस जाता है। इस रहस्य का पता चलने पर ऐसी पत्नियों के हाथों के तोते उड़ जाते हैं। महिलाओं में शिक्षा प्रसार होने के फलस्वरूप अब इसके विपरीत उदाहरण अच्छी संख्या में मिलने लगे हैं।

यद्यपि सरकार और समाज सुधारकों ने दहेज के खिलाफ़ बड़े हाथ दिखाये तथापि हर साल सैकड़ों युवतियाँ दहेज-रूपी दानव का शिकार बनती रहती हैं। यही वजह है कि बेटी के जवान होने पर माता-पिता को उसके हाथ पीले करने की चिन्ता खाने लगती है। दहेज देते समय वह धन को हाथ का मैल समझ लुटा डालते हैं। अब यह बात दूसरी है कि दहेज लेना या देना कानूनन जुर्म है। दहेज देने के बाद भी आप उन हाथों को नहीं काट सकते जो फूल-सी सुकुमार बहू को आग में जला देते हैं। माँ-बाप बेचारे बस हाथ मलते रह जाते हैं।

आज के जमाने में वही आदमी सबसे योग्य समझा जाता है जो दूसरों की जेबों पर अपने हाथ की सफाई ऐसी कुशलता से दिखाता है कि अगला खुद अपने हाथों अपनी जेब हल्की करने पर उतारू हो जाये। सच्चाई यह है कि हम सब किसी-न-किसी प्रकार एक-दूसरे की जेबों को काटने में लगे हैं। अतः कल्याण इसी में है कि इस विषय को गोपनीय रहने दिया जाये, क्योंकि बन्द मुट्ठी लाखों की। आप मुझसे सहमत न हों आपकी मर्जी। लेकिन हाथ कंगन को आरसी क्या और पढ़े-लिखे को फ़ारसी क्या? आप स्वयं हाथ-पर-हाथ धरकर इस बारे में विचारिए। धरती से आकाश तक आपको आदमी के हाथों का कमाल दिखाई देगा। यह सत्य जानने के बावजूद कि "मुट्ठी बाँधे आये जगत में, हाथ पसारे जाना है" आदमी दिन-रात धन और यश पाने के लिए हाथ-पैर मारता रहता है। बेचारा अपने ऊपर हँसने तक का समय भी नहीं निकाल पाता।

आज जमाना लोकतन्त्र का है। संसद् और सभाओं में हाथ ऊपर उठाकर मत प्रदर्शन किया जाता है। नेता लोग बड़ी-बड़ी सभाओं में अपने हाथ हिला-हिलाकर ऐसा दिल हिलाऊ भाषण देते हैं कि जनता उनके पक्ष में हाथ ऊपर उठा देती है। अभिनेताओं के हाथों का कमाल हमें धाँसू फ़िल्मों के मार-धाड़ भरे 'सीनों' में देखने को मिलता है। इसी कारण अभिनेताओं को नेता बनते देर नहीं लगती परन्तु नेताओं को अभिनेता बनने की जरूरत नहीं पड़ती।

जनता को हर पाँच साल बाद एक बार अपने हाथों का जौहर दिखाने का मौका दिया जाता है ताकि उसे यह यकीन बना रहे कि प्रजातन्त्र ठीक-ठाक चल रहा है, न चल रहा हो तो वह अपने हाथ दिखा सकती है। इस अवसर का लाभ

उठाकर भारतीय जनता ने अनेक बार बड़-बड़ दिग्गज राजनेताओं के हाथों से सत्ता छीनकर उन्हें चारों खाने चित्त पटका है।

सरकस के जोकर हों या फिल्मों के विदूषक बिना हाथ-पैर डुलाये वे दर्शकों को हँसी का पूरा मजा नहीं दे सकते। वह हँसी सच्ची नहीं जिसमें वक्ष के साथ-साथ हाथ न हिले। यही कारण है कि कभी-कभी हँसी में हिलते दोस्तों के हाथ यकायक एक-दूसरे के कपोलों पर अपनी हस्तरेखाएँ तक अंकित कर देते हैं। शायद इसीलिए कहावत बन गयी—रोगों की जड़ खाँसी और लड़ाई की जड़ हाँसी। गौर करने की बात है कि दोनों में हाथ हरकत में आते हैं।

हँसी के बिना जिन्दगी उसी तरह सूनी है जैसे बिना मेंहदी के नव-विवाहिता की हथेली। डॉक्टरों का कहना है कि खुलकर हँसने से सभी प्रकार के रोगों में लाभ पहुँचता है। हँसमुख स्वभाव के आदमी को हर जगह हाथों-हाथ लिया जाता है। उसे किसी सिफ़ारिश की जरूरत नहीं पड़ती। इस शिक्षा को अपने जीवन में उतारने वाले एक सज्जन सदा हँसते रहते थे। एक बार उनके किसी परिचित के यहाँ गमी हो गयी। हँसी के लती सज्जन वहाँ पहुँचे और पूरी तरह हँसकर जो अपना सारा गम बाहर जाहिर किया कि उनके इतने हाथ पड़े कि महीने-भर बिस्तर पर पड़े कराहते रहे। चंगे होने पर उन्होंने सदैव हँसते रहने की अपनी आदत से सदा के लिए हाथ जोड़ लिये। 'अति सर्वत्र वर्जयते' का नियम हँसी और हाथ दोनों पर लागू होता है। हाथ मारना उसी सीमा तक सुखद है जब तक कि वह दूसरे को चोट न पहुँचाये।

कुछ लोगों को दूसरों के हिस्से पर हाथ मारने में मजा आता है। ऐसे सज्जनगण काले धन से अपने हाथ काले किये बिना चैन से जी नहीं सकते। वे कोयले की दलाली में हाथ काले होना स्वाभाविक समझ निजी लाभ के लिए देश-हित की बलि चढ़ाने से नहीं चूकते। इस प्रकार के महानुभावों के चेहरों को काला कर सरे बाजार गधे पर बैठाकर घुमाना चाहिए। इससे जनता का स्वस्थ मनोरंजन होगा और देशघातियों के हाथ कमजोर होंगे।

हाथों से अपाहिजों के लिए जापान की एक कम्पनी ने ऐसी स्वचालित कार बनायी है जो ड्राइवर की आवाज़ के अनुसार चलती, रुकती और गति पकड़ती है। 'अपना हाथ जगन्नाथ' कहने वालों के लिए यह कार एक चुनौती है। परन्तु वे यह विचार कर धीरज रख सकते हैं कि इस कार को बनाने वाले आदमी के हाथ ही हैं।

आदमी अपने हाथों के बल प्रकृति की बड़ी-से-बड़ी चुनौती का सामना करने से घबराता नहीं। परन्तु बढ़ती हुई महँगाई देखकर अच्छे-से-अच्छे आदमी के हाथों में पसीना आ जाता है।

आजकल वचन देकर मुकर जाना या झूठ बोलना अधिकांश के लिए बाएं हाथ का खेल हो गया है। झूठ का अंधेरा इतना सघन हो चुका है कि रात की कौन कहे दिन में भी हाथ-को-हाथ नहीं सुझाई देता। ऐसी ही सूचीभेद रात्रि के अन्धकार में प्रणय के मारे भक्त शिरोमणि तुलसीदास जी को उनकी पत्नी ने आड़े हाथों लिया था। इसके फलस्वरूप तुलसीदास जी को राम-भक्ति की प्रेरणा मिली।

राजनीति में हाथ का महत्त्व कितना है यह इन्दिरा कांग्रेस के चुनाव चिह्न 'वरदहस्त' की लोकप्रिय मुद्रा से स्पष्ट हो जाता है।

आधुनिक विश्व की महान् शक्तियाँ परमाणु अस्त्रों-शस्त्रों की होड़ में अपना-अपना हाथ ऊँचा रखना चाहती हैं। धरती पर जीवन का प्रश्न महाशक्तियों के हाथों का खिलौना बन चुका है। यदि दुर्भाग्यवश भयानक परमाणु युद्ध प्रारम्भ हो गया तो बुद्धि का ठेकेदार मनुष्य अपने ही हाथों अपने पैरों पर हमेशा के लिए कुल्हाड़ी मार लेगा और बेचारे गधों को मानव बुद्धि पर तरस खाने का मौका तक न मिल पायेगा। ऐसा प्रलयकारी महाकाल दिवस कभी न आये, इसके लिए आवश्यक है कि सम्पूर्ण मानव जाति हर प्रकार के भेदभाव त्याग कर विश्व शान्ति आन्दोलनकर्ताओं के हाथों को मज़बूत करे।

* * *

लड़का पसन्द था

डॉ० बैजनाथ सिंहल

श्री पण्डित ओम् देव ने मेरे साथ एम०ए० में प्रवेश लिया था। वे बियासी प्रतिशत अंक लेकर गुरुकुल से स्नातक उपाधि प्राप्त करके आये थे। उनके अंकों की बात जानकर हम सभी सहपाठी अभिभूत हुए बिना न रह सके थे और मैं तो भीतर तक दहल गया था। मन-ही-मन मैं हार मान चुका था कि श्री पण्डित को एम०ए० में बीट करना मेरे बूते से बाहर की बात है। यह बात अलग है कि बाद में श्री पण्डित जी ने न केवल एम०ए० में बल्कि संस्कृत के पेपर में भी शुद्ध रॉयल डिवीज़न प्राप्त की थी।

श्री पण्डित जी का व्यक्तित्व आकर्षक था। वे विशुद्ध खादी का कुर्ता-पायजामा धारण करते थे और हिमाद्रि तुंग पर तेनसिंह द्वारा गाड़े गये, फहराते झण्डे की भाँति उनकी चोटी सदैव आकाश को चुनौती देती प्रतीत होती थी। उनके मस्तक के तिलक को आज इतने अरसे बाद सही समझ पाया हूँ। प्रतीत होता है कि एशियाड-82 के अप्पू हाथी के मस्तक पर अंकित चन्द्र के लिए प्रेरणा वहीं से ग्रहण की गयी है।

संस्कृत-निष्ठ हिन्दी बोलना श्री पण्डित का सहज गुण था। एक दिन, हॉस्टल में दोपहर के समय जब मैं मैस की तरफ जा रहा था तो कौरीडोर में पीछे से किसी ने आवाज़ लगायी—"ठहरिए पण्डित जी।" मैं चौंका और पीछे मुड़कर देखा तो श्री पण्डित एक हाथ में कटोरी थामे हुए चले आ रहे थे। इससे पहले मुझे पता नहीं था कि वे भी हॉस्टल में रहते हैं। पास आकर बोले—"पण्डित जी, **भोजनालय की ओर जा रहे हैं ?"**

"हाँ जा तो इधर ही रहा हूँ, लेकिन मैं पण्डित नहीं हूँ।"

"अजी, पण्डित जी, आप पण्डित कैसे नहीं हैं, हर विद्यार्थी पण्डित ही तो होता है।"

उनका दर्शन मेरी समझ में आ गया था, लेकिन फिर भी मैंने अनुरोध भरे स्वर में विनती की—"मुझे यह सम्बोधन बहुत रुचिकर नहीं लगता। आप मेरे नाम से पुकार सकते हैं।"

"इसमें रुचिकर न होने जैसी कोई बात नहीं है। आप इस शब्द की गहनता से अपरिचित प्रतीत होते हैं। धीरे-धीरे इसका महत्त्व मैं आपको समझाऊँगा।" उन्होंने अध्यापकीय लहजे से कहा।

अब हम 'मैस' में थे। पण्डित जी मेरे साथ ही विराजमान थे। बेयरा खाना लगा गया था। मैं पण्डित जी की ओर देख रहा था। उन्होंने कटोरी में से घी लेकर पहले तो चपातियों को पराठों में बदल दिया और शेष घी सब्जी के हवाले करते हुए, एक टुकड़ा तोड़कर अलग रख दिया। इसके बाद वे कोई मन्त्र बुद-बुदाने लगे। मैंने उनसे भोजन आरम्भ करने की अनुमति चाही तो वे मेरी ओर उन्मुख हुए—'आप घृत का प्रयोग नहीं करते, क्षमा करना इसी कारण आपकी बुद्धि... ।"

"बहुत दुर्बल है।" मैंने वाक्य पूरा किया। पण्डित जी किंचित् झेंपे लेकिन तुरन्त सम्भलते हुए बोले—"मेरा आशय केवल इतना है कि घृत बुद्धिवर्द्धक होता है। आप घृत का प्रयोग करके देखें।" मुझे अब सचमुच ही उनसे डर लगने लगा था।

पिण्ड छुड़ाने की दृष्टि से मैंने हाँ-में-हाँ मिलाना ही उचित समझा। भोजन समाप्ति पर उन्होंने वाश-बेसिन की अपेक्षा प्लेटों में ही हस्त-प्रक्षालन उचित समझा। इसके बाद वे कोई मन्त्र बुदबुदाते हुए पहले से अलग निकाले हुए टुकड़े को लेकर चल पड़े। मेरे बिना कुछ पूछे ही बताने लगे—"यह बलि का अन्न है। हमारे शास्त्रों में इसका विधान है। यों भी यह मानव का धर्म है कि वह पशु-पक्षियों का ध्यान रखे। आपने कामायनी में पढ़ा है कि बलि का अन्न अलग रखने से ही मनु का श्रद्धा से संयोग हुआ था। इस प्रकार बलि का अन्न सृष्टि के नवो-त्थान का कारण भी है।"

मैं अब तक निश्चय कर चुका था कि इनकी हाँ-में-हाँ मिलाने में ही भलाई है वरन् ये मुझे बलि का बकरा जरूर बना देंगे, यद्यपि मन में हँस भी रहा था कि इस टुकड़े से न जाने ये किस हाथी का पेट भरने की सोच रहे हैं। तभी श्री पंडित जी ने फिर से ध्यान भंग करते हुए पूछा—"पण्डित जी, आपने यहाँ कहीं आस-पास कुशा उगी देखी है?"

"हाँ, स्पोटर्स ग्राऊण्ड के दूसरी तरफ बहुत-सी कुशा है। लेकिन, आप कुशा का क्या करेंगे ?" अब तक श्री पण्डित जी मेरे लिए मनोरंजन की वस्तु बन गये थे।

'अरे पण्डित जी, इतना भी पता नहीं। प्रातः, सायं सन्ध्या करने के लिए उसकी आवश्यकता होती है। शायद आपने कुशल, कुशाग्र शब्द नहीं सुने। कुशा के प्रयोग से बुद्धि कुशाग्र होती है।" वे कुछ इस प्रकार बता रहे थे कि मानो अपनी कुशाग्र बुद्धि और मेरी मन्द बुद्धि के अन्तर और कारण पर प्रकाश डाल रहे हों। मुझे लग रहा था कि किसी ने कुशा के पैने सिरे से मेरी खोपड़ी में चीरा दे दिया हो। आते-जाते उन्होंने मुझे सायंकाल पाँच बजे अपने कमरे पर आने का निमन्त्रण दे दिया और कमरे का नम्बर याद रखने की ताकीद भी कर दी।

मैं श्री पण्डित जी के बारे में बहुत देर तक सोचता रहा कि परिवेश और शिक्षा किस प्रकार मनुष्य के व्यक्तित्व को ढालते हैं। घड़ी देखी, पाँच बजकर दस मिनट हो चुके थे। तुरन्त श्री पण्डित जी के कमरे की तरफ चल पड़ा। वे पहले से ही प्रतीक्षा कर रहे थे। मुझे देखते ही उपदेश मिश्रित स्वर में कहने लगे—"आप समय का ध्यान नहीं रखते हैं। ये अच्छे लक्षण नहीं हैं। समय बहुमूल्य होता है। कृपया भविष्य में समय के प्रति सावधान रहें। अस्तु विराजिए। इसके बाद वे एक कटोरी में कुछ लाये—

"यह क्षीर है, जिसे आप खीर कहते हैं। शास्त्रों में इसे सर्वोत्तम भोजन कहा गया है। क्षीर का सेवन पाप नाशक, कष्ट निवारक और मोक्षदायी होता है। आपको विदित होगा कि भगवान् विष्णु भी क्षीर सागर में रहते हैं।"

सचमुच क्षीर शब्द की भोज्य पदार्थ से लेकर सागर तक की व्यंजनाएँ मुझे पहले मालूम नहीं थी। मेरे लिए खीर खाना दुष्कर हो गया, क्योंकि पापों और कष्टों के नाश तक तो बात सह्य थी, परन्तु मैं अभी मोक्ष नहीं चाहता था। लेकिन, श्री पण्डित जी के रौद्र रूप की कल्पना कर मुझे मोक्ष की राह पर चलना पड़ा।

श्री पण्डित के नित्य-कर्म में कोई फ़र्क नहीं आया। उनके मन में सबसे ज्यादा क्षोभ इस बात को लेकर था कि विश्वविद्यालयों में सहशिक्षा क्यों है ? वे प्रायः शिकायत करते कि कन्याओं का व्यवहार उन्हें किंचित् अभद्र और कभी-कभी अनैतिक प्रतीत होता है। कन्याओं के फ़ैशन में उन्हें राष्ट्र-विनाश के चिह्न स्पष्ट दिखायी पड़ते थे। इस सम्बन्ध में जब मैं कुछ भी कर पाने में अपनी असमर्थता प्रकट करता तो बुझ से जाते थे। कक्षा में प्रायः चुप रहते थे। बिहारी की कक्षा उन्होंने केवल एक दिन अटेंड की थी और मुझे बताया था—"बिहारी जैसे कवि

को पाठ्य-क्रम में स्थान नहीं देना चाहिए था। बिहारी को लोगों ने दण्ड नहीं दिया, लेकिन मैं बिहारी को दण्डित करूँगा। मैं इस कवि को परीक्षा के लिए तयार नहीं करूँगा।" इस पर जब मैंने विद्यापति के सम्बन्ध में उनकी राय माँगी तो उन्होंने लगभग झिड़कते हुए से कहा—"यही तो अन्तर है साधारण पाठक और तत्त्वदर्शी पाठक में। विद्यापति को समझने के लिए महाप्रभु चैतन्य की दृष्टि अपेक्षित है। वह आप कभी प्राप्त नहीं कर सकते।"

कक्षा के विद्यार्थी अब तक श्री पण्डित के व्यक्तित्व और चिन्तन को पूरी तरह समझ चुके थे। सभी किसी-न-किसी तरह श्री पण्डित का मजाक बनाने का प्रयत्न करते, लेकिन वे यज्ञ-स्थाणु की भाँति अविचलित ही रहते। कभी उन्हें ज़बर्दस्ती केन्टीन तक ले जाने में सफल भी हुए तो श्री पण्डित ने मिष्ठान्न की प्लेट साफ़ करते हुए सदैव यही उपदेश दिया—"बहनो तुम्हारे आचरण के अनुकूल न होने का एकमात्र कारण यह चाय है। इसके सेवन से आपका मानसिक मालिन्य बढ़ता जा रहा है। यदि आप चाय का सेवन करना ही चाहती हैं तो गुरुकुल की चाय का सेवन किया करें। जो स्वास्थ्यवर्द्धक और शुद्धि-दात्री है।"

श्री पण्डित के श्री वचनों से ऊबकर पूरी कक्षा ने एक दिन उनके विरुद्ध एक षड्यन्त्र रच ही डाला। आगे तक की पूरी योजना बना डाली गयी। शान्ता जो काफी चुलबुली थी, उसने श्री पण्डित के नाम प्रेम-पत्र लिखकर संस्कृत की कॉपी में रखकर उन्हें देते हुए कहा—"श्री पण्डित जी ! कृपया आप मेरी संस्कृत की कॉपी चैक कर दीजिए। अपने उत्तर इसमें स्पष्ट अंकित करते हुए अनुगृहीत कीजिएगा।"

'अश्वमेव भगिनी।' श्री पण्डित को अपने संस्कृत ज्ञान पर कुछ गर्व हुआ। कमरे पर आकर श्री पण्डित ने कॉपी खोली तो उसमें से पत्र निकला। लिखा था—"मेरे मन-मन्दिर के देवता श्री पण्डित जी, चरण वन्दना। आपकी उपेक्षा मुझे आपके और निकट ले आयी है। कदाचित् मेरे सौभाग्य से ही आपने यहाँ प्रवेश लिया है। आपके तेजस्वी और दैदीप्यमान व्यक्तित्व की छाप मेरे मन पर इतनी गहरी अंकित हो गयी है कि अब मैं स्वप्नों में भी आपको ही देखा करती हूँ। आप हैं कि मेरी ओर दृष्टिपात भी नहीं करते। यदि आपने मेरे हृदय को विदीर्ण किया तो मैं आपकी ही शपथ खाकर कहती हूँ कि मैं आत्महत्या कर लूँगी। इससे आपका इहलोक और परलोक—दोनों ख़राब हो जायेंगे। फिर, प्रेत योनि में जायेंगे आप। स्वीकारात्मक उत्तर की प्रतीक्षा में आपकी सात जन्मों की रानी।"

पत्र पढ़कर श्री पण्डित पर क्या गुजरी होगी—इसका अनुमान ही लगाया जा सकता है। दो-तीन दिन वे कक्षा में नहीं आये। फिर एक दिन सायं मेरे रूम

का दरवाजा उन्होंने खटखटाया। अन्दर आये। कुछ देर शान्त बैठे रहने के बाद बोले—"पण्डित जी, मेरा तो सर्वस्व स्वाहा कर दिया है उन्होंने।"

मैंने अनभिज्ञता प्रकट करते हुए पूछा—"क्यों, क्या हुआ श्री पण्डित, किसने क्या कर दिया ?"

"अरे आपको सचमुच पता नहीं, वे अपनी शान्ता बहन जी हैं न कक्षा में", ...कहते-कहते पत्र उन्होंने मेरे हाथ में थमा दिया। इससे पहले कि मैं कुछ कहता, वे बताने लगे—"पण्डित जी, मैंने निश्चय कर लिया है। मैं अब शीघ्र विवाह ही कर लूं।"

"किससे, शान्ता से" मैं अनायास ही कह बैठा।

"आप भी मेरे साथ अनर्गल बातें करेंगे। आप जानते हैं कि मेरे साथ यह सब इसीलिए तो घट रहा है क्योंकि मैं अविवाहित बाल-ब्रह्मचारी हूँ। विवाह होने पर यह समस्या स्वतः ही सुलझ जायेगी।"

मुझे क्षमा-याचना का अवसर दिये बिना ही वे कहे जा रहे थे—"पण्डित जी, मैंने सारी स्थिति स्पष्ट करते हुए पिता जी को लिख दिया है। उनका सन्देश भी आ गया है कि अगले सप्ताह कन्या देखने के लिए पहुँच जाऊँ। आपको मेरे साथ चलना होगा।"

मैं सचमुच भौचक्का-सा रह गया। मन में सोच रहा था कि जनाब कन्या देखकर विवाह करेंगे। प्रकट में यही कहा—"सो तो ठीक है श्री पण्डित मैं आपके साथ अवश्य चलूँगा, लेकिन..."

"लेकिन क्या... ?"

"यदि शान्ता को पता चल गया कि आप अन्यत्र कन्या देखने जा रहे हैं तो वह निश्चित ही आत्महत्या कर लेगी। फिर आपके साथ मुझे भी पाप का भागी होना पड़ेगा।"

"अरे पण्डित जी, इस पर तो मैंने विचार ही नहीं किया था। आप ही कोई उपाय बतायें। मुझे इस संकट से उबारें। मैं आजीवन कृतज्ञ रहूँगा। आपकी इस कृतज्ञता के लिए मैं आपको सत्यार्थ प्रकाश की प्रति भेंट करूँगा।"

मैंने उनकी यथासम्भव भरपूर सहायता करने का वचन दिया। अगले दिन यूनिवर्सिटी कैन्टीन पर हम सभी इकट्ठे हुए। शान्ता ने सुबकना शुरू कर दिया। यह देखकर श्री पण्डित की घिग्घी बँध गयी। उनकी दशा सचमुच दयनीय हो रही थी। वे शान्ता से कह रहे थे—"बहन जी, शान्त हो जाइये, शान्ता बहन शान्त हो जाइये।"

"हाय आप मुझे बहन कह रहे हैं।" शान्ता ने और भी जोर से सुबकना शुरू कर दिया।

बीच में विनोद ने कहा—"श्री पण्डित, आपके लिए वस्तु मात्र न—युक्त नहीं है।"

"अच्छा तो मैं 'कन्या' शब्द का प्रयोग करूँगा। इसमें मुझे दोष नहीं लगेगा।" इसी बीच सुमित्रा ने शान्ता से कहा—"मत रो शान्ता, पुरुष सदैव ही निष्ठुर रहा है। देखो, तुम्हारी तो आँखें सूज रही हैं।"

"हाँ-हाँ शान्ता चुप भी हो जाओ और यह बताओ कि तुम किसी भी शर्त पर अपने आत्महत्या के निर्णय को स्थगित कर सकती हो।"

"स्थगित नहीं, पण्डित जी, पूरी तरह छोड़ना होगा।" श्री पण्डित लगभग चिल्ला रहे थे।

"हाँ, हाँ मेरा भी यही मतलब है।"

"नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं भारतीय नारी हूँ। मैंने सती अनसुइया के देश में जन्म लिया है। आपको ऐसा कहते हुए लाज आनी चाहिए।" शान्ता ने मुझे लगभग धमकाते हुए कहा और मुँह फेर कर मुस्कराने लगी।

"देखो शान्ता, मैं तुम्हारे प्रस्ताव के विरुद्ध नहीं हूँ, लेकिन आत्महत्या तो कायरता की निशानी है। फिर, श्री पण्डित को अभी अपने पाँवों पर भी खड़े होना है।"

इस बीच चाय आ गयी थी। रेणु चाय डाल रही थी। श्री पण्डित मेरी ओर विस्फारित नेत्रों से देख रहे थे। जब उनसे नहीं रुका गया तो बोले—"नहीं, इसमें एम०ए० करने या पाँवों पर खड़े होने जैसी कोई शर्त नहीं है।"

"तो आप विवाह के लिए अभी तैयार हैं।" रेणु ने टोहका मारा।

"अनर्थ, यह आप क्या कह रही हैं बहन।" श्री पण्डित लगभग रुआँसे हो आये। उधर एक ठहाका गूँजा। विनोद के मुँह का चाय का घूँट श्री पण्डित के धवल वस्त्रों पर बिखर चुका था।

मैंने स्थिति को सम्भालते हुए कुछ कड़ा रुख अपनाया—"तुम सबको बिल्कुल शर्म नहीं है। इस प्रकार एक नेक आदमी के पीछे पड़ जाना क्या शोभा देता है। यदि शान्ता को वर-चयन का अधिकार है तो श्री पण्डित को भी वधू-चयन का उतना ही अधिकार है।"

इस पर शान्ता बिफर पड़ी—"क्यों, मैं कोई लूली, लंगड़ी, अँधी या कानी हूँ। ठीक है विवाह जब भी हो, लेकिन ये हाँ तो करें। देखो न इन्हें मेरे साथ चाय पीना भी पसन्द नहीं।"

"श्री पण्डित आप चाय तो ले ही लीजिए।" विनोद ने समझाते हुए कहा।

ठीक है, यदि आप मेरे सिद्धान्त भंग ही करना चाहते हैं तो मैं गुरुकुल की चाय ले सकता हूँ।"

"देखो न, देखो न, इन्हें अपने सिद्धान्त मुझसे ज्यादा प्यारे है।" शान्ता ने फिर से सुबकना शुरू कर दिया।

"श्री पण्डित अब गुरुकुल की चाय का प्रबन्ध कैसे हो सकता है। अच्छा आज रहने दीजिए, कल से आप गुरुकुल की चाय हमारे साथ पिया करेंगे, करो वादा।" रेणु फुदक रही थी।

"फिर आज इन्हे हमारे साथ पिक्चर जाना होगा।" शान्ता ने शर्त रखी।

"हाँ धार्मिक फिल्म 'महाभारत' लगी है। इसे देखने मे श्री पण्डित को कोई आपत्ति नही होगी।" विनोद ने सलाह दी।

"यदि आप मेरा धर्म ही भ्रष्ट करना चाहते है तो ठीक है। मै पिक्चर चलूँगा, लेकिन... ।" श्री पण्डित कहते-कहते रुक गये।

"लेकिन क्या श्री पण्डित" मैने पूछा।

"लेकिन.. लेकिन शान्ता जी को अपना प्रस्ताव वापस लेना होगा।"

"हाँ—हाँ, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, एम०ए० पूरी करने तक शान्ता अब आपको कुछ नही कहेगी। बाद की बाद में देखी जायेगी।"

"ठीक है, लेकिन, इन्हे हमारे साथ रोजाना चाय पीनी होगी और जब तब पिक्चर देखने चलना होगा।" शान्ता ने समझौते के स्वर में कहा।

किसी प्रकार उस दिन का निबटारा हुआ। श्री पण्डित पिक्चर में आये प्रणय-दृश्यों के समय शव-आसन ही लगाते रहे।

अगले सप्ताह मैं श्री पण्डित के साथ लडकी देखने गया। श्री पण्डित ने लड़की देखने से पहले लड़की की माँ से कहा कि पहले वह कुछ अनुष्ठान करना चाहता है। न जाने फिर क्या हुआ कि श्री पण्डित संस्कृत में ही बोलने लगे—"जल देहि मातृ।" लड़की की माँ अनपढ़ थी। 'देहि' का उसे दही सुनायी पड़ा। बोली—"अभी खाना लग रहा है, दही बहुत है।" मैंने समझाया कि पानी माँग रहे है। वह बेचारी खिसियायी हो आयी—"मै अनपढ भला क्या समझूँ पढ़े-लिखो की बातें।" वह पानी दे गयी। श्री पण्डित ने कुछ मन्त्र इत्यादि पढे। फिर लड़की को लाया गया।

लड़की बॉब कट थी और जीन्स पहने थी। उसे देखकर श्री पण्डित जी बोले—"ये कन्या के भाई प्रतीत होते है।"

"नही—नही, यही हमारी बेटी है।" लड़की की माँ ने स्थिति को सम्भाला।

"हाऊ आर यू... ।" लडकी ने थोड़ा-सा मुँह खोला ।

श्री पण्डित कभी लडकी की तरफ़ देखते थे तो कभी मेरी तरफ़ । इस बीच लडकी चली गयी । साथ के कमरे से उसके रोने की आवाज आ रही थी । लड़की के पिता ने श्री पण्डित से पूछा—"तो मैं समझूँ कि लड़की आपको पसन्द है ?" उनके स्वर में किंचित् क्रोध था ।

"तात, विचार कर आपको सूचना भिजवाऊँगा ।" श्री पण्डित ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया ।

"लेकिन मैंने विचार कर लिया है । तुम इसी वक़्त यहाँ से दफ़ा हो जाओ ।" लडकी के पिता ने लगभग गुर्राते हुए कहा और हमें भूखे पेट ही लौटना पडा ।

यह बात न जाने सबको कैसे मालूम पड गयी थी । शान्ता ने सुबक-सुबककर श्री पण्डित की ख़बर ली । इसके बाद श्री पण्डित कई दिन कक्षा में नहीं आये ।

बात आयी गयी हुई । अब एक दिन पाँच-छह वर्ष बाद बस-स्टैण्ड पर किसी ने पुकारा—"पण्डित जी ।" आवाज़ परिचित-सी लगी । मुड़कर देखा श्री पण्डित खड़े थे । विश्वास नही हुआ । ये कोट, पैण्ट, टाई, बूटधारी जीव श्री पण्डित नही हो सकते । पास गया, ये तो वही थे । वे गले मिले । हाल-चाल पूछा । मैंने पूछा—"आजकल कहाँ है, क्या कर रहे है ?"

"आप तो जानते ही है कि मै रायल डिवीजन मे पास हुआ था । मास्टरी कर रहा हूँ ।"

"शादी कर ली क्या ?"

"हाँ ।"

"कहाँ, किससे ?"

अभी मिलवाये देता हूँ । वह देखो । बाथ रूम की तरफ से शान्ता आ रही थी । मैं हतप्रभ रह गया । अब तक शान्ता पास आ चुकी थी । उसने नमस्ते की ।

मेरे प्रश्न को भाँपकर स्वय ही बोली—"जब तो मैंने आत्महत्या का प्रपंच रचा था, लेकिन अब तो इनके पल्लू से बँधकर आत्महत्या कर ही ली है ।"

"चुप ।" श्री पण्डित कड़के ।

"अब किधर जा रहे है । चलो घर ले चलूँ ।" मैंने आत्मीयता का परिचय दिया ।

"नही, बस तो सीधी भी जाती थी, लेकिन यहाँ इसलिए रुक गये है कि

कोई नयी पिक्चर देखकर जायेंगे। तब तक आइये कहीं बैठकर चाय पी लेते हैं। श्री पण्डित एक ही साँस में कह गये।

मैं सचमुच कुछ भी सोच नहीं पा रहा था। श्री पण्डित के इस रूप का कभी कल्पना भी नहीं की थी मैंने और शान्ता बेचारी...शायद उसे लड़का पसन्द रहा हो।

लेकिन, मुझे लग रहा था कि मानो श्री पण्डित की चोटी मेरे सिर पर उग आयी है और श्री पण्डित खादी का कुर्ता पायजामा लिए मेरे पीछे भागे चले आ रहे हैं।

* * *

समाजवाद के नाम पर

डॉ० हेमराज निर्मम

आजाद उम्मीदवार सफल हो जाये तो उसकी बड़ी कीमत पड़ती है। यह बात हम बरसो से सुनते आये थे और कुछ सफल आजाद उम्मीदवारों के अनुभव भी सुन चुके थे। इसलिए हमने नगरपालिका के चुनाव लड़ने का अटूट फैसला कर लिया।

चुनाव जीतते ही बधाई देने वालों की ऐसी भीड़ इकट्ठी हुई कि हमने उन लोगों के लिए लड्डू लाने के लिए घर के पिछवाड़े से निकल जाने में ही अपनी कुशल समझी।

आज़ाद उम्मीदवार जीतने वाले हम अकेले व्यक्ति थे और इधर दोनों प्रमुख राजनीतिक पार्टियों के जीतने वालों की संख्या बराबर थी। हमें दोस्तों ने समझा दिया कि 'बैलेंसिंग पावर' हमारे पास ही है, मतलब यह कि जिस ओर हम करवट बदले, वही दल शासक दल हो जायेगा। उसी रात को एक दल ने हमारी नब्ज़ देखने के लिए एक आदमी भेजा। उसे देखते ही हम शाही अन्दाज में बोले—आप लेट हो गये है। ऐसे शुभ कार्यों में जो आलस्य दिखाता है, वह केवल विपक्ष में बैठता है।

आगन्तुक बहुत तेज निकला, बोला—सवाल पहले आने का नहीं होता। सवाल होता है कौन आपको किस कुर्सी पर बैठायेगा?

आगन्तुक इतना बोलकर चुप हो गया तो हमारे दिल के तार बेतहाशा झन-झना उठे। फिर भी दिल को एक हाथ से थामकर हम बोले—अपना प्रस्ताव कहिये हम उस पर विचार करेंगे।

आगन्तुक पान मुँह मे डालता हुआ बोला—मुझे मालूम है, वे आपको क्या दे रहे हैं। हमारा दल आपकी अधिक कीमत आँकता है। इसलिए हम आपको उप-प्रधान के पद पर बैठा देगे।

हमे उप-प्रधान बने अभी दस दिन भी नहीं हुए थे कि एक साँझ को 5 6 सज्जन हमारे सम्मुख आ खड़े हुए और बोले—राय साहब, आपने अहाता किरची मिरची की नुक्कड सभा के भाषण में कहा था—यदि मुझे सफल बनाओगे तो पानी का संकट दूर कर दूँगा, जो भी पानी का नया कनेक्शन माँगेगा, उसे मिलेगा।

हमने मुस्कुराते हुए कहा—आपने खूब याद दिलाया। हम अपने वायदे के पक्के है। कहा है न—रघुकुल रीत सदा चली आई, प्राण जाए पर वचन न जाई। आप लोग अर्जियाँ लाओ, हम तुरन्त आर्डर करते है।

कुछ ही दिनो मे हमने सैकडों लोगो की पानी की अर्जियाँ मजूर कर दी, तो वाटर वर्क्स के सुपरिण्टेण्डेण्ट भागे-भागे आये और बोले—जनाब गुस्ताखी की माफी चाहता हूँ। आप धड़ाधड़ पानी के नये कनेक्शन दिये जा रहे है। इतना पानी तो हम दे नहीं पायेंगे। पानी की कमी हो जायेगी।

हमने उसे रहस्य समझाते हुए कहा—हम समाजवाद के पक्के भक्त है। इसलिए हम मानते है कि पानी सबको मिलना चाहिए। जिनको अब काफी जल मिलता है, उनको कुछ कम मिलने लगेगा और जिनको बिलकुल नही मिलता, उन्हें कुछ मिलने लगेगा।

वह बोला—तब तो सब चिल्लायेंगे।

हमने सन्तोष प्रकट किया—इसका मतलब हम अपने काम मे सफल होगे। फिर हम गम्भीर होकर बोले—जितनी अर्जियाँ है, सबको कनेक्शन दे दो और सड़क पर बिना टूटी के जिस नल में पानी बहता मिले, उसे बन्द करवा दो। इस तरह पानी की खपत ज्यादा नही बढेगी।

वह चला गया तो पत्नी बोली—आपको इस पचड़े मे क्या मिलेगा?

हमने गर्व से कहा—अजी सब कुछ मिलेगा। हजारों अर्जियाँ आ गयी है। अब कमेटी से कानून पास करवा देंगे कि पानी का मीटर हरेक को लगवाना पडेगा। अपने साले की दुकान से हजारो मीटर बिकेंगे। हम रिश्वत न लेने की अपनी कसम पूरी निभायेंगे।

एक दिन हम घर पहुँचे ही थे कि स्वामी केकड़ानन्द जी महाराज अपने छह-सात भक्तो के साथ आ धमके। सारे परिवार ने तत्परता से उनका स्वागत किया। स्वामी जी ने चारों ओर अपनी मोटी गरदन घुमाकर देखा और बोले—गृह-लक्ष्मी दिखाई नहीं दे रही।

अभी आ जायगा

स्वामी जी बोले—हमारे आशीर्वाद से सफल हुए हो, फिर भी मिलने नहीं आये ?

हम बोले—आपका आशीर्वाद अभी अपने पास ही रखना चाहता हूँ।

स्वामी जी ने धीरे से कहा—कोई बात नहीं। हमारे भक्त दुलियानन्द का काम करना है। हाँ, दुलियानन्द बोलो।

दुलियानन्द ने गला साफ़ करते हुए कहा—आपने कहा था—सच्चा नेता वही है, सच्चा जनसेवक वही है जो पैसा न खाये। ठेकेदारों से रुपया न ले, नौकरी दिलाने के नाम पर मोटी रकम न डकार ले और ट्रांसफर के नाम पर अपनी फीस न माँगे।

हमने आश्चर्य से कहा—लगता है आपको हमारा सारा भाषण याद है, पर असली काम बताओ ?

वह बोला—शहर के निचले इलाकों में मिट्टी डलवाने का ठेका मुझे दे दें।

हम बोले—स्वीकार है, लेकिन काम ईमानदारी से करना होगा। जिस इलाके में हम जरूरत समझेंगे, कम-से-कम वहाँ मिट्टी पूरी डालनी होगी।

वह बोला—जो आज्ञा।

उन लोगों के चले जाने के बाद पत्नी ने पूछा—आपका चेहरा गुलाब की तरह क्यों खिल गया है ?

हम अट्टहास करते हुए बोले—उसकी जूतियाँ, उसका सिर।

पत्नी बोली—क्या मतलब ?

मतलब यह है कि वह हमें ठेके के नफ़े में से हिस्सा नहीं देना चाहता। जानता है कि हम ईमानदार है। हम भी ईमानदार बने रहना चाहते हैं। स्कूल के पास निचली जमीन, जो हमने चार रिश्तेदारों के नाम ख़रीदी है, वहाँ इसमें पूरी मिट्टी डलवाकर तीस फुट चौड़ी सडक बनवा देंगे। दो महीने में ही उस जमीन की कीमत दस गुणा हो जायेगी।

पत्नी के चेहरे को देखकर हमें लगा कि उसे विश्वास हो गया है कि हम उतने मूर्ख नहीं है, जितने उसने समझा था।

पत्नी से मुक्ति मिली तो हमारे 'फाइनेन्सिअर' मित्र ने फुलझड़ी छोड़ी—यह स्वामी केकडानन्द का क्या चक्कर है ?

हमने गुरु गम्भीर वाणी में कहना शुरू किया—स्वामी केकड़ानन्द को इस मुहल्ले के बहुत-से लोग अपना गुरु मानते हैं। चुनाव के दिनों में उनका प्रवचन

मन्दिर म होना था। वहा श्रद्धालओ की बडी भीड थी यह देखकर हमारे दिमाग के पुर्जे कुछ तेज हुए। हम मन्दिर से भागे-भागे घर आये और हमारे कहने पर हमारी आज्ञाकारी और सुन्दर पत्नी स्वामी जी को मन्दिर से पहले अपने घर ले आयी। उनकी दूध-मलाई आदि से सेवा की। उधर मन्दिर में हमे भाषण देने का अवसर मिल गया। लोगों को विश्वास हो गया कि हम केकड़ानन्द के भक्त है। इस प्रभाव से हमें काफी वोट मिले होंगे।

मित्र ने इस प्रश्न मे हमें चौका दिया—ईमानदारी दिखाने की अगली योजना क्या है ?

वन लगाने का महोत्सव आ रहा है। नये पेड लगाने के लिए जगह बनाने के लिए बडे-बड़े और पुराने पेडो को कटवाने का ठेका अपने साले के साले को देना है। वह अपनी पूरी गली की वोटे अगले चुनाव मे हमें दिलवायेगा।

इसी बीच एक सज्जन दनदनाते हुए आ पहुँचे और बोले—राय साहब ! आपने कमाल कर दिया। तमाम चुंगी चौकियों के आदमियों की बदली कर दी।

हमने दार्शनिक के-से स्वर मे कहा—क्या फर्क पड़ता है ? उन्हे नौकरी ही करनी है, कही भी लगा दें।

वह हमारे कान के पास मुँह करके बोला—पर चार नम्बर चौकी सोने की खान है।

होगी ! हमें क्या ? आप जानते है हम तो पक्के ईमानदार है। समाजवाद को मानने वाले हैं, सबको समान अवसर देते है।

वह बोला—यही तो दु:ख है। नही तो कुछ हिस्सा आपको दिलवा देता। पर इतनी मेहरबानी कीजिए, मेरे लडके को वहाँ वापस भेज दीजिए।

हमें दिलासा देनी पड़ी—कुछ महीनों मे कर देंगे।

उनके जाने के बाद मित्र के पूछने पर उसे बताया—चार नम्बर चौकी मे अब अपने मुहल्ले के ही एक लड़के को भेजा है। वह हमारे साले का दोस्त है। इसलिए पानी के मीटरो के ट्रक बिना चुंगी पर रुके अन्दर आ सकेंगे।

मित्र फिर चहके—सरकार की तरफ़ से सडकें ऊँची करने के लिए जो रकम आयी है, उसका क्या होगा ?

हमने सिर के बालों को सहलाते हुए कहा—यह काम हमने प्रधान के लिए छोड दिया है। इसमे हमे आटे में नमक जितना हिस्सा मिलेगा। मतलब यह कि प्रधान हमारे बेकार मौसेरे भाई को इन्जीनियर की नौकरी पर लगा देंगे। हम समाजवाद के पक्के भक्त है न ! काम करने का अवसर सबको मिलना चाहिए।

मैं मर गया

हरि मेहता

"मैं मर गया"—बार-बार जीते जी यही कहते-कहते यही सुनते-सुनते मैं भी आख़िर मर ही गया। इतनी आस-मुराद लिये जीता है इन्सान। आखिर कब तक और कितना ? पचास, साठ, सत्तर, अस्सी, सौ साल भी हो तो क्या ? गुज़रे तो वक्त का पता ही नहीं चलता। अब इतनी नीरस और बेज़ार ज़िन्दगी, इतनी बेबसी में जीने के बाद अचानक जो मौत चली भी आये तो अजब नहीं और राहत मिले तो भी अजब नहीं। हरि मेहता मर गया— चलो ऐसा ही सही—मरता क्या ना करता—और मरते, मरते, मरते दम तक लिखते हुए कमबख्त कह भी गया—मै मर गया—कहा करता था सरगोशियो मे जानते हो "मै मर गया" मैने पहली बार कब सुना ? एक लड़की थी—चौंकिए नहीं—कोई भी हो सकती है—प्यार मे हार कर, बाँहें फैलाये गुदाज बिस्तरे पर, अजब अल्हड़पन में खुद को पटकते हुए राहत का एक लम्बा साँस लेकर अजब मर्दानगी के अन्दाज़ मे कह उठती "मैं मर गयी"

अब तो घबरा के यह कहते है के मर जायेंगे,
मर के भी चैन ना पाया तो किधर जायेंगे।

हरि मेहता कमबख्त कहीं का—हसीनो पे मरता था। अब पता चला ना मरना क्या होता है सच बताऊँ कुछ भी नहीं है पता भी नहीं चला

बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का,
जो चीरा तो एक क़तरा-ए-खूँ ना निकला।

और सुना है बिल्ली की सात जिन्दगियाँ होती हैं। अच्छी तरह जान लो कि वाकई जान से गया या यूँही बकौल लक़लक़ बहका गया—यार लोगों को किसी और चक्कर में।

तदबीर कर कुछ उनको बुलाने की नामेहा,
जा तार घर को जा मेरे मरने की तार दे।

जब जिन्दगी को लेके बैठा तो इकबाल याद आया

तुझे क्यों फिक्र ऐ बुलबुल गुले सद चाक दामन की,
तू अपने पैरहन के चाक तो पहले रफ़ू कर ले।
तमन्ना आबरू की हो अगर गुलजारे हस्ती में,
तो काँटों में उलझकर जिन्दगी करने की खूँ कर ले।

जिन्दगी करने की क्या—मरने की कहिये—काँटों में उलझने की ही नहीं कीचड़ में घसीटने की नौबत भी आयी। जिन्दगी करना दरकिनार शायरी करने लगे तो और मुसीबत—पिट भी गये पर मरना जीना नहीं गया और हरि मेहता खुद वकील हरि मेहता—

हूँ वह लम्हा जो ग़म में बीता हूँ,
मय को पानी समझ के पीता हूँ।
जिन्दगी इस तरह से गुजरी है,
रोज मरता हूँ रोज़ जीता हूँ।

बड़े भाई शंकर दयाल सिंह भले रोज जीने और मरने वाले मुझ जैसे ना-चीज शायर के नाम इसी बात पर अपनी नयी किताब में निबन्ध का प्रबन्ध कर दें—मज़मून लिख डालें पर मैं बेचारा मैं तो मर गया ना।

जान जोखों में डाल—आँखों की रोशनी उधार लेकर—इस उम्र में आ मैंने भी जिन्दगी की एक आरजू पूरी करते-करते डॉक्टरी कर ही ली और ज्यों ही सीधे-साधे हरि मेहता से डॉक्टर हरि मेहता कहलाने लगा—डिग्री मिली तो बात बनी नहीं।

जब तक मिले न थे तो जुदाई का था मलाल,
अब यह मलाल है के तमन्ना निकल गयी।

हर कोई ग़ैर-गैरा नत्थू-खैरा जो अब तक प्यार से हरि जी, हरि भाई, मेहता साहब कहकर पुकारता था अब बस डॉक्टर साहब कहकर ही गुज़ारा करने

लगा। एक तरह रास्ता आसान भी हो गया। दिल नये-नये दोस्तों को लिये—नाम मुँह पर ना चढ़े तो यह कह दो—आइये डॉक्टर साहब।

और एक दिन जो ऐसा कहते हुए एक बिजली वाले ने सुन लिया तो मेरे घर का फ्यूज लगाने के बाद मानो मेरा फ्यूज ही उड़ा दिया—

कान में आके कहने लगा डॉक्टर साहब गुप्त रोग से परेशान हूँ जरा देखिये ना, अब ना हाँ करते बनी ना ना—हाले दिग कैफ़ियत जिस्मो-जाँ बयान कर चुका तो बिना तकल्लुफ मैंने भी डॉक्टरों की-सी तसल्ली दी और सोलह नम्बर पीने की सलाह दी—वह तो अच्छा हो गया—मैं मर गया।

मैं तो मैं उस बेचारे का क्या हाल हुआ होगा जिसकी होने वाली प्यार-व्यार में बड़ी तेज तर्रार थी। अब उसकी शादी होने वाली थी तो घबरायी कि उनको पता चल जायेगा। सहेली ने सलाह दी मिलन होते ही ज्यूँ ही वह हाथ लगाये शोर मचा दियो—हाय रब्बा मैं मर गयी—बचाओ, बचाओ। और साहब फिर जो मिलन हुआ और हाथो-में-हाथ आये तो वह हाथापाई हुई कि बजाये बीबी के मियाँ चिल्ला उठे—हाय रब्बा मैं मर गया—मेरी जान निकल गयी—बचाओ, बचाओ।

वही गालिब वाली बात—

खुश होते हैं पर वस्ल में यूँ मर नहीं जाते,
आयी शबे हिजरां की तमन्ना मेरे आगे।

कहना आसान है पर जान कहाँ जाती है। पर जरा हसीनों पर मर मिटने वालों से तो पूछकर देखिये—

किसी की जान जाती देखी है,
वह मेरी जान चली जाती है।

और किस्सा आपने उन दो जुड़वाँ भाइयों का ना सुना हो तो जहाँ तक मुझे याद है लगते हाथ सुना दूँ। जाने कहाँ और कैसे—एक कहने लगा—माँ-बाप ने कोशिश मेरे लिए की और पैदा पहले यह हो गया—स्कूल में भी पढ़ने पर मार खाना मैं और पास यह हो गया—फिर सगाई मेरी हुई और शादी इसकी हो गयी और फिर बीमार पड़ा यह तो मर गया मैं—यह नहीं—मरकर भी आखिरी रस्में अदा तो हुई मेरी और स्वर्गवास यानी जन्नत नशीन हुआ यह—

हुई मुद्दत के गालिब मर गया पर याद आता है,
वह हर एक बात पे कहना के यूँ होता तो क्या होता।

और फिर मैं मर गया तो क्या हुआ ? अपने यहाँ तो मानते हैं के आत्मा

नहीं मरती—माया नहीं मरती—मन नहीं मरता—बस शरीर मात्र ही इन्सान का खाकी जिस्म मिट्टी बनकर मिट्टी में समा जाता है। आत्मा तो परमात्मा मे समा जाती है।

माया मन तो ना मरा मर मर गये शरीर,
चिन्ता तृष्णा ना मरी कह गये दास कबीर।

मरे को मारे शाह मदार। समीह सही पर उनका क्या होता है जो मरकर भी नहीं मरते जो अमर हो गये उनकी तो केटेगरी ही अलग है या कोई स्पेशल सेक्शन से सावित्री के सत्यवान् की तरह फिर से जिन्दा हो गये। या जा के वहाँ से या तो फिर रास्ते से भी मरघट या मदफ़न से लौट आये तो वह परसौना नॉन गराटा हो गये—ना घर के रहे ना घाट के—

यहाँ मरने की पाबन्दी वहाँ जीने की पाबन्दी,
तेरे मजबूर बन्दों की ना यह दुनिया ना वह दुनिया।

यह वही बात हुई जो किसी फ़िल्म मे अमिताभ बच्चन एक शेर की कहानी गुनगुनाते हुए एक बच्चे को बताते है के कैसे उनको शेर खा गया। "पर आप तो जिन्दा हैं ?" यह जीना भी कोई जीना है बब्बुआ—यही जवाब ऐसे सभी बे-दिली से जीने वालों और फिर मुण्डू के अफ़साने एडल्टूशेन के दूकानदार को ही लीजिये। जग के दिनों में हल्दी, नमक, आटे, दाल मे मिलावट से जितना नामा कमाया कीमते गिरने पर गवाँ दिया। फाको में नौबत खुदकुशी की आयी। जहर खरीद कर खाया और अपनी तरफ से मुतमाइन हो गया के यारो, घरबार वालो मै मर गया। कई एक ने सुख का साँस लिया या नहीं लिया—नहीं मालूम—पर इतना जरूर मालूम है वह मरा नहीं—जहर में भी मिलावट थी।

अब अपनी कहूँ—सच तो यह है—

क्या कभी आपने यह पूछा है,
क्यों हरि मर गये के जीते हो।
जिन्दगी जहर था जो मीठा सा,
अब भी क्या घूंट घूंट पीते हो।

दिल्ली की तनहा रात दीवाली के जगमगाते दियों की राह देख रही थी। दूर नेहरू पार्क से हिमालय की बर्फ़ीली हवाओं का पहला-पहला झोका किसी भूले-भटके पंछी की अकेली मगर सुरीली आवाज़ के साथ कोई ढाई बजे के अँधेरो मे मेरे दिलो-दिमाग़ को छू गया और फिर वह बे-पनाह दर्द दिल में हुआ—पसीना-पसीना बायाँ बाजू थरथराया के—

जब दिया रंज बुतां ने तो खुदा याद आया,
दिल था के अब भी कोई उसे जैसे शिकंजे में जकड़ रहा था।

बेबसी ही आखिर राहत बनी—दिन-दर-दिन गुजर गया—सहारा फिर सहारा, वही दर्दे-दिल और बे-इख्तियार मेरे अन्दर का शायर जाग उठा—

हादसे लम्हा लम्हा होते है,
मौत बस एक बार आती है।
दर्दे दिल यूँ बुरा नहीं है हरि,
जान आराम से तो जाती है।

आखिरकार विलिंगटन अस्पताल के इण्टेंसिव केयर यूनिट तक खुद घुमता-घुमाता आराम से पहुँचा तो डॉक्टर हैरान परेशान--

मुस्तफी हम तो समझते थे के होगा कोई जख़्म,
तेरे दिल में तो बहुत काम रफू का निकला।

उन्हें ताज्जुब था के इतने जानकाह दिल के दर्द ने क्योंकर मैं दिल्ली के एक कोने से दूसरे तक स्कूटर चला---कार चला---पाँव-पाँव---यहाँ तक सही सलामत आन कैसे पहुँचा कमबख़्त और फिर जो इधर उन्होंने ऑक्सीजन चढ़ायी, उधर गुलूकोज, पाँव मे बेड़ियाँ हाथों में हथकड़ियाँ। इ०सी०जी० के मानीटर की लगायी तो मुझे लगा मानो मैं वाकई मर गया। पर देख लीजिये---सख़्त जान हूँ अब भी जिन्दा हूँ और कह रहा हूँ—

मरते है आरजू में करने की,
मौत आती है पर नही आती।
मौत का एक दिन मुअय्यन है,
नींद क्यों रात भर नही आती।

या फिर इस पे गिरह बाँधिये हाजी लकलक जैसी—

शहर में मिलिट्री मुअय्यन है,
नींद क्यों रात भर नही आती।

हँसी-मजाक़ एक तरफ, शायद सच तो यह है—

आज बक़दरे एहतराम मौत सलाम कर गयी,
जब यह सुना के मेरे पास दर्द है ज़िन्दगी नहीं।

* * *

तीन देव बन्दऊँ जगहन्ता

डॉ० मदन लाल वर्मा

प्रकृति का नियम अटल है। उसमें बँधा हुआ दुनिया का हर एक अदना-सा पदार्थ तत्त्व भी अपनी औक़ात की पहचान बड़ी आसानी से बना देता है। लेकिन इसके विपरीत वक्त की चाल हमेशा एक जैसी नहीं रहती। जहाँ पहले ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तीनों को ही सर्वश्रेष्ठ देवता माना जाता था, वहाँ आज तस्कर-व्यापारी, सत्ताधारी राजनीतिज्ञ, छापामार डकैत तथा उग्रवादी आदि कई नये देवताओं ने अवतार ले लिया है। हम तो आज इन्हें ही देवता मानते हैं, क्योंकि इनकी खून चूसने वाली प्रवृत्ति जूँ, खटमल और मच्छर—इन तीन छोटे जीवों के समान है। बस केवल अन्तर इतना ही है कि पहले वाले त्रिदेव जगन्नियन्ता थे, परन्तु ये तीनों देवनुमा जीव जगहन्ता हैं।

हर चीज का एक वक़्त होता है, जब उसकी कदर होती है। मौसम के मुताबिक हर प्राणी पर, हर वस्तु पर जवानी आती है। वसन्त के मौसम मे पेड़ लहलहा उठते है और गर्मी तथा बरसात में मच्छरों, मक्खियों, खटमलों आदि छोटे जीवों में अपने अस्तित्व का अहसास जन्म लेता है। जन्म ही नही लेता, बल्कि अवतार धारण करता है, क्योंकि हम इस बात को पहले ही स्वीकार कर चुके हैं कि ये आज के बुद्धिवादी युग के महान् त्रिदेव है। इन जगहन्ता तीनो देवों की हम सबमे पहले उसी प्रकार वन्दना करना अपना पहला फर्ज समझते है, जैसे प्राचीन काल में गोस्वामी तुलसीदास जी ने दुष्टों का वन्दन करना अपना सर्वप्रथम कर्त्तव्य समझा था।

कहते है—'सोलहवाँ साल लगने पर गधी भी अप्सरा बन जाती है।' इसी

तरह एक ख़ास वक़्त आता है, जब इन तीनों देवनुमा जीवों की सब तरफ स्तुति गायी जाती है। गर्मी और बरसात की तरह आज का युग बिल्कुल इनके अनुकूल फिट बैठता है।

ये तीनों देव एक ही बिरादरी के हैं। यद्यपि जूँ अपने स्त्रीवाचक शब्द की सार्थकता प्रमाणित करने के लिए हमेशा स्त्री-समूह के सुन्दर बालों में अपना आसन जमाती है, तथापि लम्बे-लम्बे बालों को सँवार कर रखने वाले पुरुषों के साथ भी उसका कभी-कभी गहरा लगाव हो जाता है।

बदक़िस्मती से अगर इस प्रकार के लम्बे और घने बाल रखने वाले स्त्री-पुरुष दोनों सर्दी के मौसम में पानी से डरकर उन्हें धोने से घबरा जायें, तो इन देवियों को बहुत आसानी से अपने रहने की जगह मिल जाती है।

देवी का खयाल आने पर हमें एक घटना याद आ गयी है। तब हम मन्दिर में जाकर कथा किया करते थे। हम कथा सुना रहे थे। बीच-बीच में कीर्तन की धुन भी लगा देते थे। हमारे सामने बैठी हुई कई देवियाँ (माफ करें, हम आजकल महिलाओं को 'देवी' शब्द से सम्बोधित करना 'ऐटीकेट' समझते हैं) अत्यन्त भाव-विभोर होकर हमारी कथा और कीर्तन का आनन्द ले रही थीं, परन्तु उन सबमें बैठी एक देवी जी का हाथ बार-बार उनके सिर पर चला जाता था और वह उसे खुजाने लग जाती थी। हमने समझा— शायद हमारी कथा में रस नहीं या उन्हें हमारी बात समझ नहीं आ रही। अचानक यह देखकर हमारी कथा वहीं रुक गयी। हमारे सत्संग में अगर एक भी व्यक्ति हमें ऐसा दिखाई दे जाता है, जो दिलचस्पी नहीं लेता, तो हमारा रस भंग हो जाता है। इसलिए हम उस कथा को वहीं समाप्त कर देते हैं। उस दिन भी ऐसा ही हुआ। हमें वहीं कथा समाप्त करनी पड़ी। बाद में जब हमने उन देवी जी से पूछा कि—

"क्या बात थी? क्या आपको हमारी कथा में आनन्द नहीं आ रहा था, जो आप बार-बार अपने सिर को खुजा रही थीं।"

तब उनका उत्तर सुनकर हम बहुत पछताये थे, क्योंकि उन्होंने कहा था कि उनके सिर में जुएँ हैं।

अब आप अन्दाजा लगाइये कि उन्हें हमारी कथा में रस कैसे आ सकता था, क्योंकि उनके सिर में ही जगहन्ता देवी के अनेक अवतार विराजमान थे।

वास्तव में यह देवी हर मौसम में अपना असर दिखा सकती है। गलियों में खेलती छोटी-छोटी कन्याओं के बालों में यह बहुत जल्दी प्रकट होती है। कई-कई दिनों तक अपना सिर न धोने वाली ये बालिकाएँ अपने बढ़ते बालों में मिट्टी के बारीक कणों का इकट्ठा कर लेती हैं और जैसे किसी बीज को मिट्टी का भरपूर साथ

मिल जाये, तो वह बहुत जल्दी पनपता है, वैसे ही मिट्टी के इन बारीक़-से-बारीक कणों का सहयोग पाकर ये देवियाँ भी अपने विकास की तरफ़ बडी तेज चाल से बढ़ती है। बढती क्या है, अवतार धारण करती है। आप भी अगर पन्द्रह दिन लगा-तार स्नान नही करेंगे, तो आपके सिर मे भी इनका अवतार हो जायेगा, बशर्ते कि आपके बाल खूब बड़े होने चाहिएँ।

इस देवी का अवतार है ही ऐसा। दरअसल हम खुद अपनी करतूतो से इनके अवतार के जिम्मेवार हो जाते है।

इसके बाद क्या होता है कि वे छोटी-छोटी लाडली कन्याएँ अपनी माताओं के पास सो जाती है। फिर ये देवियाँ उन पुत्रियों के सिरो से चलती हुई एक खुली और घनी रहने की जगह प्राप्त कर मन-ही-मन वडी खुश होती है। लेकिन इन जगहन्ता देवियों को चैन से बैठने देना, स्त्री-जाति पुरानी दानव-जाति की तरह अपना सहज धर्म नहीं समझती। छोटे-मोटे घरेलू कामों मे लीन अपने हाथों की अँगुलियाँ जब बरबस सिर की तरफ़ बढती है, तो उन्हें बड़ी कोफ्त होती है। उन्हे बार-बार हाथ धोना पड़ता है। कई स्त्रियाँ तो बडी तसल्ली से दूसरो से आँख बचाकर सिर मे इन देवियो के कारण होने वाली सुरसुरी को अपनी अँगुलियाँ फिराकर बड़े सहज और मधुर ढंग से शान्त कर लेती है और फिर उन्हीं हाथो से गीले आटे का स्पर्श भी कर लेती है। लेकिन इनके मारे उन्हें काफी तंग होना पडता है और खीझ भी पैदा होती है। इसलिए वक़्त निकालकर इनके विनाश के उपायो का प्रयोग करती है।

एक जमाना था, जब ये देवियाँ न होकर सिर्फ़ जुएँ ही कहलाती थी और इनका सर्वनाश करने के लिए दो-दो स्त्रियो की आपस में बतकही होती थी। दोनो बारी-बारी से एक-दूसरी के सिरों से इन्हे ढूँढ-ढूँढकर अपने अँगूठे के नाखून पर रखकर अँगुली के उल्टे नाखून से 'कट्' की आवाज के साथ इनका ख़ात्मा कर देती थी। लेकिन इस कार्य में उनका काफ़ी कीमती वक़्त भी बरबाद होता था और इन जुओं का सर्वनाश भी नही होता था। इसलिए आज साइंस के इस जमाने मे यद्यपि इनके विनाश के लिए जहरीली दवाइयाँ बन चुकी है, तथापि इन्हें 'देवी' का रूप मिलने के कारण कोई भी इतनी हिम्मत नहीं करती कि इन्हे जहर पिलाकर खत्म कर दे, क्योंकि सभी जानती है कि देवता पर जहर का असर नहीं हो सकता।

तीनों देवताओ मे से एक देवता या देवी का प्रॉसेस हमने आपको बता दिया है। इस देवी का लक्ष्य हालाँकि दूसरे दोनों देवताओ की तरह ही है, परन्तु इसकी पॉलिसी मे थोड़ा अन्तर है। यह छापामार डकैत की तरह खूब सोच-समझकर धीरे-धीरे अपना काम करती है, हालाँकि खून चूसने का इसका काम भी दूसरे दोनो देवताओं की तरह है।

बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वानों की बुद्धिरूपी बालों की घनता में भी कुछ चाटुकारी देवियाँ अपनी जगह बना लेती हैं। वे उनकी घनता में छुपकर उन्हें गुदगुदाने की कोशिश करती हैं। यद्यपि उन पण्डितों के सिद्ध हाथों की अँगुलियाँ उन्हें पकड़ने की कोशिश करती हैं, तथापि वे पूरी तरह से ख़त्म होने से बच जाती हैं। ऐसी चाटुकारी देवियों को समाप्त करना आज जितना आसान है, उतना ही मुश्किल भी है।

अपनी बुद्धि को शास्त्ररूपी साफ़ पानी से नहीं धोयेंगे, तो अपनी इन चाटुकारी देवियों का भी एक मसला देश के लिए सिरदर्द बन जायेगा। परन्तु हम तो सच्चे दिल से इन्हें प्रणाम करते हैं।

सावन का महीना! आसमान में घने बादलों की छितरायी छत! ठण्डी-ठण्डी हवा के झोंके! आप सहन में खाट बिछाकर आराम से सो रहे हैं। अचानक आपकी नाक पर मोटी-मोटी बूँदों का प्रहार शुरू हो जाता है। आप अपना बिस्तर समेट कर बरामदे में आ जाते हैं और चारपाई बिछाकर लेट जाते हैं।

सीलन से भरी गन्ध आपके कच्चे बरामदे में फैली हुई है। आपको नींद नहीं आती। आप करवटें बदलने लगते हैं। नींद न आने की वजह से आपका मन बेचैन हो उठता है। अचानक आप महसूस करते हैं कि आपकी पीठ पर किसी ने सुई चुभो दी है। आपका हाथ खुद-बख़ुद उसी जगह पर पहुँच जाता है। आपके हाथ रूपी शिकंजे में कोई बहुत छोटी-सी चीज़ सरककर बाहर निकल जाती है। आप समझते हैं कि आपको वहम हुआ है। लेकिन जब फिर जल्दी ही उसी तरह की चुभन आपको महसूस होती है, तब आपको पूरा यकीन हो जाता है कि हो-न-हो—यह खटमल देवता की मेहरबानी है। आप चारपाई छोड़कर अन्दर बिछे तख़्तपोश पर सोने की कोशिश करते हैं। कमरे की सारी खिड़कियाँ खोल देते हैं, ताकि हवा मिलती रहे और नींद में भी खलल पैदा न हो।

आप सोने से पहले यह इरादा कर लेते हैं कि सुबह उठते ही अपनी चारपाई से इन जगहन्ता देवों को निकाल बाहर करेंगे। और सुबह आसमान के बिल्कुल साफ़ होने पर खुली धूप में चारपाई बिछाकर आप उस पर डण्डों का प्रहार करने लगते हैं। आप क्या देखते हैं कि धड़ाधड़ इस देवता ने अपने अनेक रूपों का अम्बार धरती पर जाहिर कर दिया है। आप उनका पुराने जूतों से संहार करने लगते हैं। लेकिन आपके इस कार्य के दौरान कुछ चालाक देवता फटाफट आपकी खाट के पावों के सुराखों में घुस जाते हैं। कुछ ख़ास किस्म के धूर्त देवता तो खाट की बाहों में लिपटी मूँज के नीचे छिप जाते हैं और अपने नाम 'खटमल' (खाट को मलने वाला) को सार्थक करने लगते हैं। इस तरह साफ़ जाहिर होता है कि आप इन सब देवताओं का विनाश करने में नाकामयाब हो जाते हैं।

ऐसा है इन दूसरे प्रकार के देवताओं का प्रॉसेस। इनका काम है चुपके से

लोगो के आराम करने की जगह पर जाकर छिप जाना और फिर उनकी सुख-सुविधा में रुकावट डालना, उन्हें चैन से सोने न देना, उन्हे शान्ति मे बैठने न देना और बिना किसी स्वार्थ के तंग करते रहना।

दरअसल यह एक ऐसा देवनुमा जीव है, जो तस्कर-व्यापारियों की श्रेणी का है। यह खून चूसकर भाग जाने मे हमेशा कामयाब हो जाता है। आजकल हमारे समाज में इन देवताओं के अनेक रूप देखे जा सकते है। कुछ कलाकार खटमल देवता है और कुछ सत्ताधारी राजनीतिज्ञ खटमल देवता है। ये बीसियो अवतार लेकर लोगो का खून चूसते है।

यद्यपि इस खटमल देव के विनाश के आधुनिक उपायो की खोज हो चुकी है, जैसे—'टिक् ट्वण्टी' इसके सर्वनाश की सबसे आसान दवाई है, तथापि हम लोग उस दवाई को इस्तेमाल करने मे शायद इसलिए कतराते है कि हमे इस 'टिक् ट्वण्टी' का मौलिक अर्थ मालूम नही।

'टिक्' से मतलब है घडी की आवाज और 'ट्वण्टी' तो अँग्रेजी का शब्द है, जिसका अर्थ है 'बीस'। आप इन देवों को भगाने के लिए बीस सैकण्ड मे ज्यादा देर लगायेंगे, तो ये आपके ऊपर हावी हो जायेगे। तब आपको न दिन को चैन मिलेगा और न रात को।

हमारी आप से हाथ जोड़कर यही विनती है कि आप अपनी खाटो को सीलनभरी जगहों पर कभी भी न रखे। आप अपने दिमाग की खाट को खुली धूप लगने दे और उसे खुली हवा मे रहने दे। किसी तंग विचारधारा की सीलन-भरी कोठडी मे उसे बन्द करके न रखे, नही तो उसमे इन तथाकथित देवताओ का प्रवेश बडा आसान हो जायेगा।

एक बार हम फैमिली प्लॉनिंग पर किसी नेता की स्पीच सुन रहे थे, तभी हमारे पास बैठी एक देवी ने हमे पहचानते हुए कहा—

"भाई साहब! शायद आपने मुझे पहचाना नही।"

हमने अपना सिर हिलाते हुए उन्हें जवाब दिया—

"नही।"

क्योंकि हमे उस नेता की स्पीच मे बड़ा रस मिल रहा था और हम यह नही चाहते थे कि उन देवी जी से अपनी जानकारी प्रमाणित कर अपने रस का भंग करें। जब हमने उनकी तरफ़ लापरवाही दिखायी, तो वह बोल उठी—

"भाई साहब! मै आपके पडोस मे रहने वाली मिसेज गुप्ता हूँ। आपको पता ही है कि मेरे सात लड़के और चार लड़कियाँ है। ये सभी खटमल मेरा पीछा छोड़ते ही नही। क्या करूँ?"

उनका यह जवाब सुनकर हम मन-ही-मन मुस्करा दिये।

इस प्रसंग को यहाँ बताने का केवल इतना ही प्रयोजन था कि खटमल देवों की यह एक और किस्म है। ऐसी स्त्रियों का यह कहना दरअसल करुणा को ही पैदा करता है। इन खटमल देवताओं के नये-नये अवतारों का आना आपके लिए बहुत कष्टदायक हो जायेगा। इसलिए अगर आप अपना पीछा इनसे छुड़ाना चाहते हैं, तो आप अपने घरों की सफाई रखें। अपने मन-मन्दिर में हमेशा झाड़ू लगायें। अपने रहने की जगह को बदबू, सड़न और सीलन का अड्डा न बनने दें। परन्तु हम तो इन्हें साक्षात् देवता समझकर सिर झुकाकर नमस्कार करते हैं।

अब हम अपने आख़िरी तीसरे देवता की चर्चा करना अपना धर्म समझते हैं। यह तीसरा देवता और कोई नहीं। इसका बहुत मशहूर नाम है—मच्छर देवता। इस देवता को गन्दगी का ढेर उसी तरह प्रिय है, जैसे गणेश जी को लड्डू प्रिय है। गन्दे पानी से भरी नालियाँ हों, कीचड़ हो, दलदल हो—ऐसी ख़ास जगहों पर इसका अकेला राज्य होता है। लेकिन इसके जासूस गर्मी और बरसात में घरों के अन्दर तथा ड्राइंग-रूम्ज में भी पाये जाते हैं। आपने कभी भूले से कमरे का दरवाजा थोड़ी देर के लिए खुला छोड़ दिया, तो यह देवता चुपके से उस प्रवेश द्वार का सदुपयोग करके कैलेण्डरों के पीछे, तस्वीरों के पीछे या दीवारों पर ईंटों के जोड़ वाले हिस्सों में अपना अड्डा जमा लेता है।

रात होती है और आप बारिश से बचने के लिए अपने बेडरूम की खिड़की खोलकर बिस्तर पर लेटते हैं कि इस देवता का काम शुरू हो जाता है। यह एक ऐसा अनोखा देवता है, जो सिर्फ अपने मौसम पर ही भरोसा रखता है। सर्दी के मौसम और तेज आँधी से इसे ऐसी चिढ़ है, जैसी किसी युवती को एक बूढ़े खूसट से होती है। अब दोनों के असम्भव समागम की तरह सर्दी और मच्छर देवता का संयोग भी नामुमकिन-सा होता है।

इस देवता के काम की होशियारी की दाद देनी पड़ती है। कैसे सुन्दर तरीके से प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ मनुष्य के चरणों पर सबसे पहले अपना मस्तक झुकाता है! जब मानव को अपने चरणों पर होने वाली छुअन महसूस होती है, तो वह अपने हाथ से चरणों पर झुकने वाले उस अद्भुत देवता को जैसे उठाकर अपने गले लगाना चाहता है, लेकिन उसके हाथ पहुँचने से पहले ही वह उसकी पीठ के पीछे चला जाता है, ताकि यह मालूम न हो सके कि वह इतना घटिया क़िस्म का देवता है कि जिस किसी के पैरों पर लोटता फिर रहा है।

उसकी होशियारी का सबूत इससे बड़ा क्या हो सकता है! पीछे छिपकर मानव की पीठ के मधुर माँस का अपने बारीक़ दाँतों से स्वाद लेना तो कोई उससे ही सीखे। जब तक अपनी पीठ पर होने वाली चुभन को महसूस कर मानव उसे

पकड़कर मसलना चाहता है और कष्ट उठाकर अपने हाथ को पीठ की तरफ ले जाता है, तब तक वह गुस्ताख देवता उसके कानों के पास जाकर अत्यन्त मधुर राग अलापने लगता है।

इस तथाकथित सुरीले गान से जब मानव की नींद में खलल पड़ने लगती है, तो वह अपने हाथ से झटका देकर उसे अपने कानों से दूर भगाना चाहता है लेकिन तब तक उस काइयाँ किस्म के अनोखे देवता को सुनहरी मौका मिल जाता है और वह चुपके से कान के उसी छेद में ही घुस जाता है।

मानव की सारी कोशिशें बेकार हो जाती है और वह देवता अपनी जीत के घमण्ड में झूमता हुआ मानव के दिल के महलों की सैर करता हुआ उसकी सारी खुफिया बातो को जान लेता है।

ऐसा होता है मच्छर देवता का प्रॉसैस। इस जगहन्ता देव के विनाश के भी कई तरीके खोज लिये गये हैं। केंचुआ छाप अगरबत्ती से लेकर खास तरह की ट्यूब की मरहम तक बन चुकी है। यह मरहम कवच का काम करती है। इस कवच का अपने शरीर पर लेप करने वाले मानव के चारो ओर अनगिनत सैनिकों की तरह मच्छरों के अनेक अवतार मँडराते रहते है, लेकिन उस पर वार नही कर सकते।

कल्पना कीजिए! अगर इस नजारे को अपनी आँखों से देखने का आपको मौका मिले, तो आप कैसा महसूस करेंगे। हो सकता है, आपको उस कवचधारी लड़ाकू मानव से ईर्ष्या होने लगे। लेकिन हम तो आपको यही कहेंगे यदि आप अपने शरीर को विशिष्ट गुणों के कवच से ढककर रखेंगे, तो समाज के अनगिनत अवतारी मच्छर देवता आपका कुछ भी बिगाड़ नही सकेंगे। आप अपने चारों ओर गन्दगी न फैलने दें। अपने हृदय के महल को साफ़-सुथरा रखें। मैले पानी जैसे अवगुणों को इकट्ठा न होने दें, फिर भला क्या मजाल है कि ये दुष्ट मच्छर देवता आपके पास फटक भी सकें।

लेकिन यह सब हम आपके लिए ही कर रहे हैं। हम तो अन्य दोनों देवताओं की तरह इस महान् मच्छर देवता को माथा टेकते हैं।

इन तीनों देवताओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि यद्यपि तीनों का लक्ष्य—'खून चूसना' एक समान है, तथापि तीनों की पॉलिसी में अन्तर है। कोई छापामार डकैत है, तो कोई उग्रवादी है। जैसे मच्छर देवता उग्रवादी आक्रमणकारी है।

आज के इस बुद्धिवादी युग में इन तीनों जगहन्ता देवों की वन्दना बहुत लाजमी हो गयी है। अगर हम सब इनकी स्तुति नही करेंगे, तो हमारा आने वाला समय शायद हमारे लिए मुसीबत बन जाये।

कहते ना है कि जितना छोटा, उतना खोटा। ये तीनों देव दरअसल आकृति में बहुत ही छोटे हैं। इसलिए आप इन्हें छोटे देवता समझकर लापरवाही से न बैठ जायें। ये किसी भी समय मौका देखकर आपका सुख-चैन छीन सकते हैं, आपकी नींद हराम कर सकते हैं और आपकी रही-सही बुद्धि को भी कुण्ठित कर सकते हैं।

युग के अनुकूल प्रवृत्ति पर नजर डालिये। इनकी वन्दना हमारा सबसे पहला फर्ज है। हम अपनी पवित्र भारतीय संस्कृति के दुनिया-भर में मशहूर बाने माने जाते हैं। कहीं ऐसा न हो कि हमारी लापरवाही का नाजायज फ़ायदा उठाकर इन तीनों देवताओं की तरह कोई जगहन्ता बाहरी दुश्मन हमारे देश की सुकोमल काया पर प्रहार कर दे या अपने ही घर का कोई अवतार खून चूसने लगे। इसलिए आप सबसे हमारा निवेदन है कि इन तीनों देवताओं के संसर्ग से अपने आपको दूर रखते हुए इन्हें हमेशा सिर झुकाते रहें। यही हमारी नेक सलाह है आपको।

बस, इन्हें दूर से पॉलागन कीजिये, क्योंकि ये हमारे नये देवता हैं। पहले वाले देवताओं की पूजा होती थी। हमें भी अपने इन नये देवताओं की खूब अच्छी तरह 'पूजा' करनी चाहिए, क्योंकि हम स्वयं ही इन देवों की सृष्टि के उत्पादक हैं।

जय हो जगहन्ता त्रिदेव की !

ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः !!

* * *

चुगली तेरा सत्यानाश

डॉ० राजेन्द्र वत्स

आपको यह बड़ा अटपटा और अजीब-सा लगेगा, यदि कोई आपको यह कह कर चौंका दे कि हर इन्सान का जाने-अनजाने में चुगली से साक्षात्कार होता है। ऐसे में आप इसका बुरा भी मना सकते हैं और प्रतिक्रिया में नक्कारे की चोट पर यह उद्घोष व एलान भी कर सकते हैं कि आपका ऐसी घटिया व घिनौनी चीज से दूर का भी रिश्ता नहीं। आप नाक-भौं सिकोड़ व माथे पर त्योरी डाल कितना भी इन्कार करें और अपनी सफाई में चुगली से कोई वास्ता व सरोकार न रखने की बाबत हजार दलीलें पेश करें, लेकिन सच, सच है—और वह छिपने से तो रहा। और फिर आप तनिक सच्चे दिल से गरेबान में मुँह डालकर देखें तो पायेंगे कि चुगली साये की तरह इन्सान का पीछा करती है। समय-समय पर आप इसका सहर्ष शिकार भी होते रहे हैं और इससे आनन्दित भी। चाहे इसे आप विडम्बना कहें, लेकिन है यह कथ्य सोलह आने सच। ऐसा न होता तो आम बोलचाल में निन्दा को रस की उपाधि से विभूषित न किया जाता। हालाँकि काव्य-शास्त्र में इस तरह के किसी रस का उल्लेख नहीं मिलता, लेकिन साहब काव्य-शास्त्र द्वारा इसे रस स्वीकारने-अस्वीकारने से क्या होता है। लगता है निन्दा व चुगली का "कब्जा सच्चा—झगड़ा झूठा" की उक्ति में पूर्ण विश्वास है। उसने जबरदस्ती रस के सिंहासन पर आधिपत्य जमाकर अपनी विजय-पताका फहरा दी है और आज उसका हर खास-आम में ज़िक्र होता है। हर जगह उसका बोल-बाला है। सच भी है जिसकी लाठी उसकी भैंस।

माफ करना चुगलखोर व चुगलखोरी की भर्त्सना करने में यदि आपका किसी व्याकरणाचार्य से सामना हो गया, तो वह खीज-कुढ़कर गिला-शिकवा करेगा —भाई लोगों की अज्ञानता की भी हद हो गयी। भला उन्हें यह तक पता नहीं कि सही शब्द तो चुगल व चुगली है। चुगलखोर व चुगलखोरी शब्द तो एकदम अशुद्ध है। शब्दकोश इसकी साक्षी भरते हैं, लेकिन साहब शब्दकोश खरीदने और देखने की कौन जहमत गवारा करे। जब खोटा सिक्का असल करन्सी व लीगल टेण्डर से ज्यादा टनाटन की आवाज़ करता हुआ चलता हो, तो असल-नकल व शुद्ध-अशुद्ध की फ़िक्र क्यो की जाये। लेकिन बेचारा परम्परा के भँवर मे उलझा दकयानूसी व्याकरणाचार्य शायद यह नही जानता कि जो लोग दम ठोककर गलत शब्द बोलते है तो किसी बलबूते पर। वह अपनी वकालत के लिए किसी भाषा-वैज्ञानिक को ले आयेंगे जो व्याकरणाचार्य से यह कहते हुए भिड़ जायेगा—"व्याकरणाचार्य जी, क्या आपने कभी इस बात पर गौर करने की तकलीफ़ फरमाई है कि भाषा पहले बनी कि व्याकरण ? और फिर भाषा एक बहती हुई गंगा है, जो रुकती नही और जिसमे नित नया जल बहता, आगे बढता है। जिसे आप अशुद्ध होने का 'लेबल' चिपकाकर खोटा सिक्का बताते है, वह भाषा का विकास है। दूसरो में मीन-मेख निकालने या बेकार दूसरों की बातो में टांग अड़ाने की बजाये आपको अपना व्याकरण-शास्त्र समय-समय पर 'अपटुडेट' करना चाहिए। आपकी अधूरी सोच व आचरण को क्या अधिकार हासिल है कि बिना सोचे-समझे दूसरो के नाम अज्ञानता व जहालत का सर्टीफिकेट जारी कर दो। यह तो अच्छा हुआ आमने-सामने दो टूक बात हो गयी, नही तो हर ऐरे-गेरे नत्थू खैरे के सामने आप चुगली खाते कि फलाँ महाशय को इतना भी पता नही कि चुगलखोर व चुगलखोरी कोई शब्द नही होते। उसे इतना भी मालूम नही कि चुगली खाई नही जाती, चुगली की जाती है। लेकिन जो शब्द अपने साथ विशेष सन्दर्भो व अर्थो को जोड जन-साधारण में चल निकले और जनता-जनार्दन उसे टकसाली होने का प्रमाण-पत्र प्रदान कर दे तो वह गलत कैसे हुआ।" चुगली की बाबत इस वाद-विवाद को चाहे आप विडम्बना कहे, लेकिन है यह सवा सोलह आने सच।

यह सब सुनकर आप लोग कहेंगे कि चुगली की तरह ही इसकी व्युत्पत्ति की बहस फ़िजूल है। आज के इस दौड़-धूप के जमाने में बाल की खाल निकालने की किसे फुरसत है। हमे तो इसकी मोटी पहचान और प्रक्रिया बता छोड़िए। थोड़े मे काम की बात कीजिए।

तो लीजिए मै आपको मानव सभ्यता व संस्कृति के उद्‌भव और विकास के साथ जुड़े व सटे इसके जन्म व इतिहास के विस्तार मे नही ले जाता। इसको बताने व खोज निकालने के लिए लम्बा समय दरकार है। इसके लिए तो समग्र

विश्व सभ्यता-संस्कृति व समूचे विश्व इतिहास के पन्ने उलटने होंगे और फिर कौन-सा युग, देश-प्रदेश व घर-दर है जहाँ चुगली प्रवेश न किया हो ? कन्हैया की नन्ही चुगली पर ये पंक्तियाँ ऐन फिट बैठती है—

नही है कोई घर ऐसा जहाँ उसको न देखा हो,
कन्हैया से कुछ कम नही सनम मेरा है हरजाई।

अतः चुगली से तो कोई विरला ही अछूता रहा होगा। बहुतों ने इसे मारू व घातक अस्त्र-शस्त्र के तौर पर इस्तेमाल किया जिसकी वार व मार के चिह्न बडी सरलता से रेखांकित किये जा सकते है। लोक-कथाओ मे ऐसे पात्र बहुतायत मे मिलते है जो चुगली कर अपना काम बनाते-साधते है। इन कथाओं दूती या दूत भेजकर राजा या रानी को बहकाने-फुसलाने, भड़काने, मार्ग-च्युत करने की बात का जिक्र आम मिलता है। राजनीति की रणनीति का तो सदा ही यह बड़ा कारगर उपकरण रहा है। ब्रह्मा का पुत्र नारद, कितना ही धवल व उज्ज्वल हो, वह कितना ही भगवान् का परमभक्त रहा हो, लेकिन समय गुजरने के साथ यह पात्र परम कलहकर्ता और विघ्न डालने वाले शख्स का प्रतीक बन गया। उसे लोक मे 'आट के बाट भिड़ाने' का प्रतीक माना जाने लगा। इस पात्र ने वाग्पटुता व चुगली के सन्दर्भ में गुण-अवगुण कब अपने साथ जोड़ लिये, इस बारे मे कुछ भी निश्चित रूप से कहा नही जा सकता, लेकिन आज लोग चुगलो मे परमचुगल को नारद की मानद उपाधि से विभूषित करते हुए उसके आगमन को अनिष्टकारी मान मशकित हो उठते है और उसके बहिर्गमन को शुभ मानते हुए सुख की साँस लेते है। अगर कोई सज्जन सरेआम आपको यह कहकर—"लो भई आ गये नारद" सम्बोधित करे तो आपका तन-बदन क्या कुण्ठा व कोप से झुलस नहीं जायेगा ? भले ही आप व्यंग्य बाण को मुस्कराकर झेल जाये लेकिन दिलो-दिमाग अजब सिहरण से विकम्पित हो उठेगा। चाहे कोई इस कटु सत्य को प्रकट मे न स्वीकारे, पर है यह साढे सोलह आने सच। तभी, सब लोग नारद नाम से परहेज करते है। कोई अपने बेटे का नाम नारद नही रखता। कभी ऋषियो व भक्तो में शिरोमणी कहलाने वाला नारद आज सबसे बड़ी गाली का प्रतीक बन गया है। यह विडम्बना नहीं तो क्या है ?

नारद के प्रसग से आप यह न मान बैठे कि चुगली की महान् कला पर पुरुषो का ही एकाधिकार है; नारी किसी भी युग में—चुगली की होड़ व घुड़दौड मे पीछे नही रही और न आज ही पीछे है। रामायण युगीन मन्थरा का नाम कौन नहीं जानता। कहने भर को वह दासी थी, लेकिन चुगली करने में कितनी दक्ष रही होगी कि उसी ने रानी की मति हर ली और रानी भी कोई ऐसी-वैसी नही—पति परायणा केकैयी को भला कौन नही जानता, जिसने पति के प्राणों की रक्षा के

लिए समरांगन में अपनी जान की बाजी लगा दी। लेकिन, धन्य है मन्थरा और उसकी चुगली कला का कौशल कि उसने कैकेयी को अपने पति व पुत्र से शत्रुता बरतने पर मजबूर कर दिया। मन्थरा ने अपनी वाग्पटुता से कैकेयी के मन में सौतिया डाह का विष घोल दिया। इससे रानी की आँखों पर स्वार्थ की पट्टी बँध गयी। वह कोप भवन में जा लेटी। परिणामतः पति परलोक सिधार गये और राम को सीता व लक्ष्मण समेत मिला चौदह वर्ष का वनवास। एक तरह से देखा जाये तो मन्थरा को मूल राम-कथा के निर्माण का श्रेय मिलना चाहिए था, परन्तु उसे मिला क्या, सिवा इसके कि उसके दामन में कुटिलता का ऐसा बदनुमा दाग लग गया कि तुलसीदास, मैथिलीशरण गुप्त प्रभृति मनीषियों के द्वारा उसे धोने का भरसक प्रयास करने पर भी—जो मिला नहीं। अब माताओं द्वारा अपनी धी-बेटियों का यह नाम रखना तो एक तरफ़, कोई किसी औरत को मन्थरा कहकर तो देखें—वह गाली-गलौच व मरने-मारने पर उतारू हो जायेगी, गोया 'मन्थरा' क्या कह दिया, उसे बड़ी भौंडी-भद्दी गाली दे दी। यह विडम्बना नहीं तो क्या है।

एक मेरी भी सलाह मानिये। चुगली की पहचान पत्र-पत्रिकाओं में दिये राशिफल से करने का यत्न बिल्कुल न करें। वर्णों के आधार पर तो चम्पी, चाटु-कारी, चमचागिरी, चिरौरी व चापलूसी का राशिफल भी वही होगा। चम्पी या चाटुकारी व चुगली के भिन्न अर्थ और गुण बताते हैं कि ये दोनों अलग-अलग वर्गों से सम्बन्धित हैं। हाँ, वैसे कार्य सम्पन्न करने की दृष्टि से विरोधी न होकर एक-दूसरे की पूरक हैं—एक-दूसरे के प्रति सहकारिता भावना से ओत-प्रोत। हाँ, केवल इनमें अन्तर है तो यह कि चम्पी या चाटुकारी प्रत्यक्षत: की जाती है तो चुगली परोक्ष रूप से, चम्पी सामने की जाती है तो चुगली पीठ पीछे। चम्पी व चाटुकारी हृदय को हुलसाती-पुलकाती ही है जबकि चुगली कचोटती, कुण्ठित करती और सालती भी है। वैसे इस चम्पी में बड़े-बड़े गुण वाली बात चुगली पर पूर्णतया लागू होती है।

अब देखिये चुगली की सार्वभौमिकता का गुण। पत्नी ने दफ़्तर से देर से लौटे पति से आशंका प्रकट करते हुए कहा—"जी, सोनू के पापा की तरह आप भी हर रोज़ देर से लौटते हैं। सोनू की मम्मी कह रही थी—इन मर्द लोगों का क्या ऐतबार—न मालूम कहाँ क्लबों में जाते हैं, किधर घूमते फिरते हैं? क्या कुछ खाते-पीते हैं?" पति ने कुढ़कर उत्तर दिया—"अगर मैं सोनू की मम्मी के कहे पर ऐतबार करूँ तो? परसों वह मुझे कह रही थी कि तुम्हारी 'वो' यानी तुम उस नुक्कड़ पर खड़ी किसी मर्द से बड़ी खुलकर हँस-हँसकर बतिया रही थी। फिर क्या था दोनों मियाँ-बीवी में अच्छा-खासा वाग्युद्ध छिड़ गया था। कोई भी अपनी हार मानने को तैयार नहीं था।

एक पति-पत्नी ही क्या घर-भर में कौन ऐसा होगा जिसको चुगली ने धूल नहीं चटवायी होगी। अपने पंजों की गिरफ्त में कसकर न जकड़ा होगा। फिर जादू वह जो सिर चढ़कर बोले। परसों ही बेटी माँ से अपनी भावज की शिकायत कर रही थी—"मम्मी, भाभी पड़ोसिन से कह रही थी—न जाने मैं कब परायी होऊँगी। पच्चीस साल की होने को आयी, माँ जी को इसके हाथ पीले करने की कोई फिक्र नहीं। लम्बी तानकर सोयी हुई है। मम्मी, भाभी छोटे भैया की बाबत कह रही थी कि धूर्त कहीं का—मेरी ओर घूर-घूर कर देखता रहता है।" भला माँ अपने बेटा-बेटी का अपमान कब बरदाश्त कर सकती थी! फिर तो घण्टा-भर सास अपनी बहू को कोसती-फटकारती रही। देखा, चुगली ने क्या गुल खिलाया। इसे तो एक क्या प्रतिदिन ऐसे हजारों गुल खिलाने की आदत है।

घरों में ही क्या चुगली का क्या स्कूल-कॉलिज और क्या बैंक व दफ़्तर हर जगह बोल-बाला है। कोई छोटू हो कि लम्बू, पेटू हो या मोटू, सब इससे आनन्द लूटते हैं। हाँ, चुगली करने के उनके अपने विशिष्ट अन्दाज़ हैं। मोटू अपनी किस्म का जीव है जिसके निकट काम हराम है। नेहरू जी के नारे 'आराम हराम है' का उससे कोई सरोकार नहीं। यह उसके मिजाज को सूट नहीं करता। उसने हमेशा चुगल-चापलूसी से काम निकाला है। वह अपनी भारी-भरकम तौंद फुलाये बॉस का माफिक मूड ताड़ केबिन में घुसने की ताक में रहता है। मौका मिलते ही साहब को फर्शी आदाब बजा लाता है। उसे देख बॉस का चेहरा गुलाब-सा खिल उठता है। हवा का रूख माफक देख मोटू निराश स्वर में धीरे से ये शब्द दाग देता है—"अफ़सर के हुकम मानने से भी लोग न जाने क्यों चिढ़ते हैं। मैं साहब का काम करता हूँ तो अपने हाथों से। अपनी टाँगों से चलकर जाता हूँ। बस साहब, अजब जमाना है एक तो काम करो ऊपर से बेकार आदमी का खिताब पाओ। वह आपका सुपरिटैण्डेण्ट खन्ना है ना। कहता था अबकी बार रिपोर्ट लाल कर देगा। इन धमकियों से तो मैं साहब की खिदमत करनी छोड़ने से रहा। इजाजत हो तो छोटी मुन्नी को कण्वेंट स्कूल में दाखिल करवा आऊँ। बीबी जी कल कह रही थीं। मैंने सोचा साहब के नोटिस में बात लाता जाऊँ। ऐसा न हो फिर मिस्टर खन्ना मुझ पर बिगड़ें।" मिस्टर मोटू की नसल के बाबू हर दफ़्तर में बड़ी तादाद में मिल जायेंगे जो एक ही बार में बॉस और उसके बीवी-बच्चों पर जाल फेंकते हैं, कुछ करते-धरते नहीं फिर भी बढ़िया रिपोर्ट और 'आउट ऑफ टर्न' तरक्की पाते हैं और अपने साथियों व अफ़सरों की टाँग खींचते हैं, उन्हें धूल चटाते हैं। वाह, उनके क्या कहने। एक ही बार में कितने शिकार। अब भाषाविदों को मजबूरन 'एक पत्थर दो शिकार' का मुहावरा बदलकर 'एक पत्थर ढेर शिकार' करना पड़ेगा। वाह मेरे शेर मोटू, अपने व्यवहार से पूरी परम्परा ही बदल डाली। चुगली तुम्हें धन्य है। किस में हिम्मत है कि तुम्हें धत् व धिक्कार बताये।

हाल ही के वर्षों में जब से औरतों ने दफ्तरों में घसपैठ की है तब से चुगली के मुँह काले बड़ी मात्रा में वहाँ भी फटते हैं कल ही दो दफ्तरी महिलाएँ एक दूसरे की चुटिया पकड़कर ज़ोर-आज़मायी कर रही थी। बाद में पता चला कि चुगली ने उन्हें बॉक्सर बनने पर मजबूर कर दिया। सच यह फ्री-स्टाइल कुश्ती का नजारा दर्शनीय था। पहले गली-मुहल्ले ही औरतों की काना-फूसी व चुगली-चकारी के अखाड़े थे। नतीजे के तौर पर अक्सर वहाँ का वातावरण चक-चक, चीख-चिल्लाहट और गाली-गलौच से गरम रहता था। ऐसे में कभी मार-धाड़ व सिर फुटव्वल हो जाता तो सभी ऊँची आवाज 'चुगली तेरा सत्यानाश' कहकर चुगली की निन्दा करते। चुगली न करने की कसमें खाते। वायदे करते कि चुगली को पास नहीं फटकने देंगे, उसे मुँह नहीं लगायेंगे लेकिन निन्दा रस का जायका, इसका चटखारा ही निराला है, यह जिसके मुँह एक बार लग गया—जिसे इसकी बुरी लत पड गयी तो फिर उस इन्सान का अपने पर काबू नही रहता। छुटती नही है काफ़र मुह से लगी हुई—यह बात चुगली पर सौ फीसदी खरी उतरती है। चुगल व चुगली की सब निन्दा करते है, लेकिन सभी इससे भरपूर मजा लूटते है--यह भी एक विडम्बना है।

* * *

एक और शरणार्थी

जगदीश कौशिक

दस बजे खुलने वाला पुनर्वास विभाग का कार्यालय भारतीय परम्परा के अनुसार भले ही ग्यारह बजे अर्थात् निश्चित समय से केवल मात्र एक घण्टा लेट खुल चुका था, परन्तु अभी भी कई कुर्सियाँ खाली पड़ी थीं। जिस देश में 'क' से लेकर 'ह' तक सारे ही काम लेट होते हों, वहाँ बेचारे दफ़्तरों ने किसी का क्या बिगाड़ा है, कि वह समय पर करने के लिए बाध्य हों। खैर जो भी हो, आखिर बड़े साहब ने आकर कुर्सी की शोभा बढ़ायी और सिगरेट सुलगाकर, घर से दफ्तर तक मोटर-साईकल पर आने के कारण हुई थकावट को दूर किया। सिगरेट की अन्त्येष्टि हो जाने पर कॉल बैल बजाकर चपड़ासी को बुलाया। चपड़ासी जो सत्ताईस नम्बर की बीडी सुलगाये दफ़्तर के बाहर बैठा था, घण्टी की आवाज सुन कर अन्दर चला गया। बड़े साहब ने उसे ताज ब्राण्ड लिप्टन टाईगर पत्ती वाला चाय का कप लाने का आदेश दिया और आपने फ़िल्मफेअर का पाठ शुरू कर दिया। घड़ी की सुईयाँ जैसे-जैसे आगे सरकती जा रही थी, वैसे-वैसे ही मुर्दा-सा लगने वाले ऑफिस में जान-सी आती दिखायी देने लग गयी। टाईप की मशीनें खटखटाने लग गयी। इक्का-दुक्का कागज एक मेज़ से दूसरे मेज़ तक की यात्रा के लिए चल पड़े। बड़े साहिब ने चाय समाप्त करके रीडर को बुलवाया और पूछा—'बाबू सुन्दर लाल ! आज कितने केस है ?' रीडर ने सूची देखकर बताया—'आज तो एक पुराने केस की ही सुनवायी है, जनाब ! कोई नया केस नहीं है।'

बुलवाओ सायल को, ताकि शीघ्र काम निपटा लिया जाये, हमें भी आज शीघ्र एक अपुआईन्टमैण्ट पर जाना है।"

रीडर ने चपड़ासी को बुलाकर सायल का नाम बतलाकर उसे आवाज़ लगाने का आदेश दिया। चपडासी ने ऑफिस से बाहर आकर अदालती स्टाईल में आवाज लगायी—"रऽ ऽ बो, कोऽ ऽ ऽ ई, रब्ब हाज़िर है।"

रब्ब बेचारा जो सवेरे आठ बजे से बिना कुछ खाये-पीये बेजान-सा बेंच पर पडा ऊँघ-सा रहा था, आवाज सुनकर एकदम खड़ा हो गया और सहमा-सहमा-सा चिक उठाकर अन्दर चला गया।

बडे साहब ने हाथ मे पकड़े कलम को अँगुलियों में घुमाते हुए प्रश्न किया—'क्या नाम है?"

रब्ब ने हकलाते हुए उत्तर दिया—"जीऽ ऽ वैसे तो जितने मुँह उतने नाम है, कोई भगवान्, कोई ईश्वर, कोई प्रभु, कोई खुदा और कोई वाहिगुरु कहकर बुलाता है, परन्तु पक्का नाम रब्ब ही है श्रीमान् जी!"

"बाप का नाम?" साहिब ने दूसरा प्रश्न-रूपी गोला दाग दिया।

रब्ब काफी देर तक इस प्रश्न का उत्तर देने के बारे मे सिर खुजलाकर सोचता रहा, फिर थोडा रुककर बोला—"साहिब! इस प्रश्न का उत्तर देना टेढी खीर-सा दिखाई दे रहा है। जैसे आज तक यह पहेली हल नही हो सकी, कि अण्डा पहले पैदा हुआ था या मुर्गी, ऐसे ही आज तक मुझे भी पता नहीं चल सका कि मेरा बाप कौन है, और मैं किस का पुत्र हूँ? लोग-बाग मुझे स्वयम्भू ही कहते हैं।"

"चलो खैर, तेरा बाप कोई है या नही, इस बात से हमें कोई सरोकार नही, तेरा अपना वजूद तो है ही, हम भी तुम्हें स्वयम्भू ही मान लेते है—तुमने अपने आवेदन-पत्र मे लिखा है, कि मैं एक शरणार्थी हूं, मुझे रहने के लिए पक्के तौर पर कोई स्थान अलाट कर दिया जाये। क्या तू पाकिस्तान से आया था या बंगलादेश की पैदावार है?'

बड़े साहिब का प्रश्न सुनकर रब्ब ने उत्तर दिया—"जनाब! मै बाहर के किसी देश से नही आया, मुझे तो अपने देश मे रहते हुए को ही शरणार्थी बना दिया गया है।"

"यह कैसे? हम समझ नही सके, हमे स्पष्टीकरण चाहिए।" साहिब ने सिगरेट सुलगाते हुए आदेश दिया।

'श्रीमान् जी! निवेदन है कि कुछ समय पहले तक मेरे रहने के कई स्थान

थे मन्दिर, मस्जिद और गुरुद्वारा आदि, जहाँ भी चाहता था, डेरा डाल लेता था, परन्तु अब घर है ना घाट वाली स्थिति होकर रह गयी है। धर्म-स्थानों मे रहने वाला और करोड़ो श्रद्धालुओं की श्रद्धा का पात्र मैं अब अपने ही देश मे बेगाना-सा बनकर रह गया हूँ।' रब्ब ने रुंधे गले से अपनी स्थिति का कुछ स्पष्टीकरण दिया।

इस गोल-मटोल स्पष्टीकरण को सुनकर रीडर ने धीरे से बड़े साहिब के कान में कहा 'साहिब ! मुझे तो यह कोई पागल मालूम हो रहा है, शायद कोई उग्रवादी ही न हो।'

बड़े साहिब ने ऐनक के शीशों को रूमाल से साफ़ करते हुए कहा 'बात अभी भी स्पष्ट नही हुई।'

रब्ब ने परेशान-सा होकर मुँह में आये थूक को अन्दर निगलते हुए फिर कहना आरम्भ किया 'बड़े साहिब ! बात यह है कि मुझे भगवान् या ईश्वर कहने वाले जब मन्दिरों में जाते थे और मेरे नाम का जाप करते थे तो कई प्रकार की भेंटें चढ़ाते थे, जिनसे मेरा निर्वाह भली प्रकार होता रहता था। मैं भी यथा-शक्ति उनके कई बिगड़े काम बनाता रहता था। किसी को नौकरी पर लगवाता था, किसी को परीक्षा मे पास करवाता था, कईयों को रोगों से छुटकारा दिलवाता था, परन्तु पता नहीं, अब कैसी हवा चल गयी है कि सब कृतघ्न होकर मुँह मोड़ गये है। मेरे स्थानों पर पुजारियो और मन्दिर सुधार सभाओं के मैम्बरों ने कब्जा जमा लिया है, इन लोगों ने मेरे नाम पर आया चढ़ावा हड़प करना आरम्भ कर दिया है। मेरे स्थान पर सभाओं और प्रधानों की पूजा होने लग गयी है और मेरे सब स्थान राजनीति का अखाड़ा बनकर रह गये है। जिस पार्टी का बोल-बाला हो जाता है, वह ही अधिकार जमाकर बैठ जाती है। दिन-रात अब मन्दिरों मे कथा-कीर्तन के स्थान पर राजनीति की चर्चा चलती रहती है। पुजारी भी मेरा नहीं सभा के सदस्यों का ही गुणगान करते रहते है, गांजे के दम लगाते रहते है, भाँग ने चरणमृत का स्थान ले लिया है। भक्तों द्वारा चढ़ायी गयी सामग्री सभा के सदस्यों के घरों मे पहुँच जाती है। हर समय एक-दूसरे को नीचा दिखाने की योजनाएँ तैयार होती रहती है। अब तो श्रीमान् जी, वहां देवियो की इज्जत भी सुरक्षित नही।'

गुरुद्वारो में भी अब मुझे कोई स्वीकार नही करता, वहाँ भी धर्म का नहीं, राजनीति का ही प्रचार जोरो पर है। मस्जिदों की स्थिति भी मेरे लिए घातक सिद्ध होकर रह गयी है। किसी मेरे सिंहासन की नहीं, अपनी-अपनी कुर्सियों की ही चिन्ता खाने लग गयी है। नमाज की बात स्वप्न होकर रह गयी है। वहाँ भी चाकू-छुरियो के साये में पृथकवाद की चर्चा चलती रहती है। गाय और सूअर की

ओट में स्वार्थ सिद्धि के झगड़े-फ़सादों की योजनाएँ तैयार होती रहती हैं। इसी कारण समय-समय पर शहरों में होने वाले दंगों के समाचार भी पढ़ते रहते होंगे।

कभी-कभी मैं तीर्थ-स्थानों पर जाकर भी चार दिन सुख से काट लेता था, परन्तु, सरकार! वहाँ भी मुझे अब कोई टके सेर नहीं पूछता। तीर्थ भी लूट-खसोट और व्यभिचार के अड्डे बनकर रह गये हैं। इन हालात से दुखी होकर ही श्रीमान् जी, मैंने आपकी सेवा में प्रार्थना-पत्र दिया है, कि मुझे कोई ऐसा स्थान अलाट कर देवें, जहाँ मैं सुख-शान्ति से जीवन व्यतीत करता रहूँ।"

बड़े साहिब ने यह सब कुछ सुनकर कहा है—"ठीक है, तेरे बयान नोट कर लिए है, अगली पेशी पर निर्णय दे दिया जायेगा।"

अगली पेशी पर जो फैसला सुनाया गया, वह कुछ इस प्रकार था, भारत एक समाजवादी, धर्म निरपेक्ष देश है, प्रजातन्त्र में सब के अधिकार समान होते हैं। हमारी राष्ट्रीय नीति है कि जीओ और जीने दो। तुम पहले अकेले मौज उड़ाते थे, अब सब मिल-बाँटकर खा रहे है, सो तुम्हें कोई शिकवा नहीं होना चाहिए। फिर तुम हो भी अकेले, कहीं भी गुजारा कर सकते हो। आज देश के लोगों को तेरी नहीं, कुर्सी की अधिक आवश्यकता है। जो काम तू नहीं कर सकता, वह कुर्सी कर सकती है। आज तुम्हारा नहीं, राजनीति का युग है। स्वार्थ का जमाना है। वैसे भी अकेला आदमी कुछ नहीं कर सकता। हथकण्डो से ही उल्लू सीधा हो सकता है। अब तुम्हे भी किसी नेता के साथ अटैच होकर अपना भविष्य निर्धारित करना चाहिए। विभाग के पास तुम्हारे लिए कोई स्थान नही। अतः केस खारिज किया जाता है।"

फैसला सुनकर रब्ब बेचारा निराश होकर किसी नेता की तलाश में ऑफिस से बाहर निकल गया।

* * *

लेखक-परिचय

1. **श्री दिनेश दधीचि**

   जन्म : 15 दिसम्बर, 1954

   पता : प्राध्यापक अँग्रेजी विभाग
   यूनिवर्सिटी कॉलेज, कुरुक्षेत्र-132119

   प्रकाशन : इबारत हाशिये की (कविता-संग्रह)

2. **डा० हिम्मत सिंह जैन**

   जन्म : 20 नवम्बर, 1937

   पता : सच्चा सौदा क्लॉथ हाउस
   कृष्ण गली, उकलाना मण्डी (हिसार)

   प्रकाशन : उत्तर मध्यकालीन कृष्णाख्यानक प्रबन्ध काव्य, कृष्ण लीला-परक खण्ड काव्य, हिन्दी कृष्ण-चरित काव्य।

3. **श्री जगत् राम जगत्**

   जन्म : 13 अक्तूबर, 1937

   पता : टेलीग्राफ असिस्टेंट, केन्द्रीय तार-घर, हिसार

   प्रकाशन : आह्वान

4. **श्री नन्दलाल मेहता**

   जन्म : 25 जून, 1940

   पता : मेहता सदन, बसई रोड, गुड़गाँव

5. **श्री मधुसूदन**

   जन्म : 15 अप्रैल, 1941

   पता : हिन्दी विभागाध्यक्ष, छाजूराम मेमोरियल जाट कॉलेज,
   हिसार

   प्रकाशन : उर्वशी : एक अध्ययन, अथ व्यंग्यम्

6. **कुमारी रोहिणी**

   जन्म : 9 दिसम्बर, 1959

   पता 335 हाउसिंग बोर्ड कालोनी भिवानी

7. डा० रणजीत सिंह

जन्म : 8 मार्च, 1926

पता : मार्फ़त आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा, दयानन्द मठ, गोहाना रोड, रोहतक

प्रकाशन : आर्य समाज का इतिहास, भारतवर्ष का इतिहास, ईश्वर का स्वरूप और सत्ता, प्रतिपदा, मधूलिका, सन्त निश्चलदास, बांगरू का व्याकरण वैदिक सत्सग पद्धति

8. डा० रूप नारायण शर्मा

जन्म : 6 अगस्त, 1935

पता : 1552, सैक्टर 18-डी, चण्डीगढ़

प्रकाशन : संक्रमण, किराये का मकान और अन्य हास्य नाटिकाएँ, बिखरे फूल

9. डा० जयनाथ 'नलिन'

जन्म : 15 फरवरी, 1911

पता : किरोड़ीमल गार्डन, हॉसी गेट, भिवानी

प्रकाशन : हिन्दी नाटककार, हिन्दी निबन्धकार, विद्यापति, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, भक्ति काव्य में माधुर्य-भाव का स्वरूप, काव्य-पुरुष निराला, साहित्य का आधार दर्शन (आलोचना), नवाबी सनक, हाथी के दाँत, नये पर्दे नये दृश्य, निशान्त, रग बदरग (नाटक-एकाकी), यामिनी, धरती के बोल, इस पार के बंधन (काव्य), जवानी का नशा, झुर्मुट, टीलों की चमक, सिक्के असली-नकली (कहानी-सग्रह), शतरंज के मोहरे, बिखरते साये (शब्द-चित्र), निराला काव्य-कोश, देवयानी।

10 डा० हरिश्चन्द्र वर्मा

जन्म : 5 जनवरी, 1934

पता : इ-12, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

प्रकाशन : संस्कृत कविता में रोमांटिक प्रवृत्ति, अधा युग : एक विवेचन, नयी कविता के नाट्य-काव्य, तुलसी साहित्य मे नीति, भक्ति और दर्शन, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नयी पीढ़ी नये स्तर।

11 श्री राजेन्द्र निशेश

जन्म : 14 दिसम्बर, 1944

पता : 2698, सक्टर 40-सी, चण्डीगढ़

प्रकाशन : दीवारों के कान

12. **श्री अशोक भाटिया**

जन्म : 5 जनवरी, 1955

पता : 18, गोबिन्द नगर, अम्बाला छावनी

13. **श्री सुरेन्द्रनाथ सक्सेना**

जन्म : 8 फरवरी, 1936

पता : सी-7, ऑफीसर्स बंगला,
हिसार टेक्सटाइल मिल्स, हिसार

प्रकाशन : एक खण्डित इन्द्र धनुष, दिव्य सुन्दरी, जलती राहें।

14. **डा० बैजनाथ सिंहल**

जन्म : 11 जनवरी, 1945

पता : रीडर हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

प्रकाशन : अलगाव दर्शन और साहित्य समीक्षा, नयी कविता : मूल्य मीमांसा, साहित्य : मूल्य और प्रयोग।

15. **डा० हेमराज 'निर्मम'**

जन्म : 5 अगस्त, 1931

पता : प्रवक्ता, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

प्रकाशन : हिन्दी उपन्यास में मध्य-वर्ग, हिन्दी उपन्यास के शिखर, गद्यकार द्विवेदी, मुझे भूल जाना, बसंत फिर आयेगा, लाल बहादुर, टूटते बंधन, जाल और मुक्ति, सीप का मोती, करुणा के प्रतिनिधि, रण में उतरे वीर सपूत, मानव चाँद पर उतरा, आदर्श नागरिक, मैं क्या करूँ, आधुनिक भारतीय शिक्षा।

16. **(स्व०) श्री हरि मेहता**

जन्म : 1 जुलाई, 1928

प्रकाशन : दोस्तों का दोस्त, एक खत हेनोई को, पेशा, इन्तजार और अभी, बिन बचपन के बच्चे, हमी सो गये, मियाँ बीबी राजी, एक खिड़की खुली है, अदला-बदली, जरा-सी धूप, स्वप्नों का ताजमहल, पिटते-पिटते, लेडी डॉक्टर, रंगमच के रंग, ठेकेदार, उलझे हुए लोग, उजालों की आस, कलियाँ

17. र वर्मा

16 मई, 1931

133-एल-1, मॉडल टाऊन, रोहतक-124001

हिन्दी काव्य मे युद्ध-वर्णन वैशिष्ट्य (शोध-प्रबन्ध), काँटो मे बधा गुलाब (हिन्दी उपन्यास), व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण िचार वीथी (संस्कृत)।

18. स्वरूप वत्स

1 अगस्त, 1935

लोक सम्पर्क अधिकारी, हरियाणा राजभवन, चण्डीगढ़

छतावे की कचोट, दादी दाखां का फाग, साहस कथाएँ।

19. कौशिक

3 जून, 1925

-758, गाँधी चौक, सदर बाजार, करनाल

खोटे (पजाबी कविता)